॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

श्रीगुरुभ्यो नमः।

अमृतधारा ग्रन्थ.

साधु भगवान्दासनिरंजनीकृत.

स्वामीराघवानंदजी रामस्वरूपानंदजीने शुद्ध किया.

यह ग्रन्थ,

स्वामीजीके आज्ञासें श्रीकृष्णदासात्मज-

गंगाविष्णु, खेमराज.

इन्होंनें

मुंबईमें

'श्री कल्पतरु' छापखानामें छापके प्रसिद्ध किया.

संवत् १९४५ शके १८१०.

सर्व मुमुक्षुजनोंके हितार्थ.

ॐतत्सत्परमात्मने नमः

॥ अमृतधाराग्रंथकी प्रस्तावना ॥

श्री परमकृपालु परमेश्वरने सृष्टि विषेचोरासिलक्ष योनिके जीव उत्पन्न किये है तैसे चारो वेद उत्पन्न किया है ता वेदोविषे कर्म उपासना ज्ञान यह तिन् कांड रचे है औं धर्म अर्थ काम और मोक्ष ए चारो पुरुषार्थ लिख्या है। ये सर्वका अधिकार मनुष्यशरीरमे है, कारन के मनुष्योंकूं वेदशास्त्रका यथार्थ ज्ञान होवे है और मोक्षका हेतु जो ज्ञान है औ ज्ञानका हेतु विचारयुक्त जो साधन चतुष्ट है सो मनुष्यशरीरमेही होवे है परंतु इदानींकालविषे वेद मूल संस्कृत का ज्ञान होनां दुर्लभ है ऐसे जानिके पूर्वाचार्योने हिंदुस्तानी भाषान्तर विषे वेदांतप्रकरण रचे है तामे वेद शास्त्रका सर्व अर्थ भाषामे दर्शाया है जिसकरिके इदानींकालके अधिकारीजनोकूं ज्ञान होयके सुगम मोक्ष होवे इस अर्थ ऐसे मूल संस्कृतका भाषांतर देखिके महा ज्ञानी परम दयालु श्री साधु भगवानदास निरंजनीने यह अमृतधारानामक ग्रंथकूं रचा है तामे वेदांतकी सर्वत्र क्रिया लीखी है वेद शास्त्रके अनुसार है इसमे को अंसमेवि विरोध हे नही ॥ और है कवितावि अति सुगम है सर्वके समझने मै अर्थ आवे ऐसी रचिके अपनी संप्रदामे प्रवर्त किया तिसको देखीके अनेक अधिकारी जनोकूं इच्छा हुंइके यह भाषा ग्रंथ अपनेको मिलेतो बहुत अच्छा ऐसे जानीके अनेक संतोने हमारेपर पत्रद्वारा सूचन किया परंतु हमने

यह ग्रंथकी सोध कोटमे बारकोटमे वढकी गादि सुतारचाली आदि सर्व ठिकाने तथा भावनगर सियोर आदि सर्व जग्या सोध कराया परंतु मिला नही ॥ और सर्व सज्जनोने ऐही आज्ञा करीके आप सर्व मुमुक्षुपर दया आनिके परउपगार के अर्थ छपाइ के प्रसिद्धकरो इसलिये छपाया है सर्व सज्जनोको यह हमारी प्रार्थना है कि हमारा सर्व अपराध क्षमा करना येही विनंती है.

यह ग्रंथ महाज्ञानी अर्जुनदासजीके शिष्य साधुभगवानदासजीने रच्या है. १७२८ सालमें कार्तिकमास शुद्ध तृतीयाके दिन रच्या गया है. इसके प्रतिअध्यायस्थलमें प्रभाव संज्ञा करी है.

यह ग्रंथ बहोत प्राचीन हुवा, किसीकूं मिलतानहीथा. इसकेलिये परमहंसस्वामी श्री १०८राघवानंदजी महाराजनें लोकोपकारके अर्थ. प्राचीनप्रत्यें प्रतको महाप्रयत्नसें शुद्ध करके छपवायके प्रसिद्ध किया है।

ॐतत्सद्ब्रह्मणे नमः

अथ श्रीअमृतधाराग्रंथकी अनुक्रमणिकाप्रारंभः

श्रीपरमात्मने नमः

श्लोक

वंदेगुरुंमथितबुद्धिविनोदचंचत् ।
स्वर्णाद्रिमंथनिगमागमदुग्धसिन्धुं ॥
शिष्यप्रशिष्यनिवहैर्विदुषीस्वभूमिम् ।
राघवानन्दविदधतंविविधैर्विधानैः ॥

॥ श्री :॥

श्रीवेंकटेश्वर छापखानेमा मिलेगा.

ब्राह्मणोत्पत्ति–मूल संस्कृत और भाषाटीकासह इसमें सर्व प्रकारके ब्राह्मणोकी उत्पत्ति सविस्तार है. ग्रन्थ संख्या १०,००० किं० ३॥ रु० डा० म० ८ आना.

क्रीडाकौशल्य–मूल संस्कृत और हिंदीभाषा टीकासह इस ग्रन्थमें सतरंज, गंजफा, चौपड, आदि अनेक प्रकारके खेलोंकी रीति परमोत्तम वर्णित है. ऐसा अद्भुत ग्रन्थ अबतक कही नही छपा और प्रत्येक खेलकी न्यारी न्यारी तसबीरभी है सब खेल ५३ प्रकारके हें किं० १॥ रु० डा० म० ४ आना.

नाम.	रु०	डा० म०
१ यजुर्वेदसंहिता (वाजसनेयी) सर्वानुक्रमणिका याज्ञवल्क्य शिक्षासहित	३	-।=
२ दशउपनिषद्मूल स्थूलाक्षर	३	-।=
३ इशाद्यष्टोपनिषदभाषाटीका	४	-॥-
४ मंत्रसंहिता	-॥-	८-
५ रुद्री	-।-	८-
६ दंडकयजुर्वेदी	-।-	८॥
७ पितृसंहिता	८=	८॥
८ वेदस्तुतिसटीक भाषाटीका	१	८=
९ आत्मपुराण सटीक	१६	१॥
१० पंचदशी सटीक	२॥	-।-
११ अनुभूतिप्रकाश	२।	-।-
१२ गीता श्रीधरीटीका	१।	८≡
१३ श्रीरामगीता भाषाटीका	-।-	८-

नाम.	रु०	डा० म०
१४ रामगीतामूळ	८=	८॥
१५ गीताबडेअक्षरकी १६ पेजी गुटका	१	८=
१६ गीतावडेअक्षरकी खुली	-॥-	८=
१७ गीतागुटका छोटा	-॥-	८–
१८ गीता गुटका ३२ पेजी बडा अक्षरकी	-॥-	८–॥
१९ पंचरत्न अक्षरमोटा गुटका रेशमीवीनीका	२	-।-
२० पंचरत्न बुक्फाशन सप्तरत्न	१	८=
२१ पंचरत्न अक्षरवडा लंबीसंची खुला	१॥	८≡
२२ पंचरत्न और एकादशरत्नचित्रसहित बीनीका	१	८=
२३ पंचरत्नद्वादशरत्न	-॥=	८–
२४ पंचरत्न नवरत्न पाकिटबुक	-॥-	८–
२५ पांडवगीताअक्षरवडा	८=॥	८॥
२६ पांडवगीतासाथी	८=	८॥
२७ निगमांतार्थदीपिका	-॥=	८–॥
२८ योगवासिष्ठ संस्कृत	२०	२।=
२९ शारीरक (शांकरभाष्य) रत्नप्रभाटीका व्यासाधिकरणमाला. ओर भक्तिसूत्र अक्षरवडा. सभाष्य	१०	
३० वासिष्ठसार ६ प्रकर्ण वेदान्तका....	२॥	-।=
३१ योगवासिष्ठछोटागुटका	१।	८=
३२ तुलसीदासकृतरामायण बडे अक्षरका अतिउत्तम क्षेपकसहित	५॥	१
३३ तुलसीकृतरामायणक्षेपकसह टाईपका	३	-॥-
३४ प्रेमसागर टाईपका	१।	८≡
३५ चाणकनीति भाषा टीकादोहासहित जिल्द	-॥=	८=
३६ तुलसीदासकृत दोहावळीरामायण	-।–	८–
३७ स्वरोदसार	८=	८॥

॥ श्रीपरमात्मनेनमः ॥

अमृतधाराग्रंथ

मंगलाचरण.

दोहा—मंगलरूप स्वरूप मम । निजानंद पदजास॥ लह्यो मंगलाचरन यह । सोहं हंसप्रकास ॥ १ ॥

कवित—जिव सिव एक करों असिपद भाव धरों ॥ अहंपास वासहरों अमृत प्रमानिये ॥ मरनको भे न सायो अव्यय स्वरूप पायो ॥ वेदविद्य जो लखायो गुरुज्ञान जानिये ॥ मान तजि मानिलेरे तेरोहि स्वरूप हेरे ॥ सबे अभेदांन देरे हेरे अमिखानिये ॥ भगवान भयो भान मो बीना न लहे आन ॥ विषया विषसमान विद्वत बखानिये ॥

कुंडलियाछंद—अमृतधारा ग्रंथहे ॥ ताको करु बखान ॥ तिमरहरन अति सुखकरन ॥ वाको निगमपुमान ॥ वाको निगमपुमान ॥ आन सब आन बिसारों ज्यों जल फेंन तरंग ॥ अंग सब आप बिचारों ॥ बुद्धिसुद्धिकरिके पिये ॥ निर्मल पुटिकाकान ॥ अमृत धारा ग्रंथहे ॥ ताको करुं बखांन ॥ ३ ॥

दोहा—अमर अमरता नहि अमर। अमर अमरपति नांहि ॥ मरन जनम संमय नसे। लहो अमरपद तांहि ॥ ४ ॥ यह अमृत अमृतसही। अमृतता परकास ॥ अंजनता अमृतनही। अमृतनिरंजन भास ॥ ५ ॥ पिये पियूष जिव युक्तिसों। तजि अयुक्ति अज्ञान ॥ अखंड धारा ज्यों तेलकी, सो अमृत परमान ॥ ६ ॥

सोरठा—श्रीगुरु संतप्रताप। वरनो बुद्धिविलास कछु॥ तजो आनको जाप। जगजोई सांईसही ॥ ७ ॥

अरिल—जाते अमृत होई सों युक्ति बताइयें ॥ प्रथम चार अनुबंध तहां मन लाइयें ॥ अधिकारि अरु विषे लखे सनबंधरे ॥ परिहां परम प्रयोजन जान ओर सनबंधरे ॥ ८ ॥

दोहा—कह्यो बरनि वर धर्म सम। अधिकारी को हेत॥ साधनते फल सिद्ध है। ज्यों करसाको खेत ॥ ९ ॥

अथ अधिकारिबरनन.

दोहा—साधन चारि विचारि युत। कहियें ताको भेद॥ वैराग्यआदि षट अंग पुनि। निजविवेक कहें वेद ॥ १० ॥ वैराग्य कहो अरु विवेक पुनि। षट संपति बखान ॥ जब यह साधनता सधे। तब मुमुक्षता जान ॥ ११ ॥ प्रथम बरनि बर कहतहों। निर्मल निजवैराग्य॥

निःकंचन पद पाईयें । प्रगटे पूरण भाग्य ॥ १२ ॥
चारि भेद वैराग्यके । तिनको करूं निरूप ॥
हेतुस्वरूपफलअवधिपुनि । प्राप्ति सुद्ध स्वरूप ॥१३॥

कवित—वैराग्य स्वरूप जान विषया विषसमान ॥ यह सीख हियमान और नहिं कोइरे ॥ विषकोरे जानि यह कारण प्रमांनि यह ॥ भोगबुद्धि हांनि यह सो स्वरूप होइरें ॥ प्राप्तिको जतन नाहि अप्राप्तिकी चाह नांहिं ॥ आधिनता दिन त्यागि यह फल जोइरें ॥ ब्रह्मपुर शेष आदि भोग सुख सबे बादि ॥ भगवान सुखस्वादि अवधि समोइरे ॥ १४ ॥

अरिल—प्रथम विषेषु दोष सो हेतु विचारियें ॥ पुनि विषयनको त्याग स्वरूप निहारियें ॥ नासे दिनाधिन यह फल होईरे ॥ परिहां सबे लोक लखिसोग अवधिपद जोईरे ॥ १५ ॥

एक वैराग्य चार प्रकारसें कहेहे.

१ प्रथम जितमान २ बीजो व्यतिरेक
३ त्रीजो एक इंद्रिय ४ चोथो वशिकारी

जितमानको भेद.

अरिल—सारासार विचार रेन दिन करत हे ॥ हंसज्ञान परमांन गुरुया कहत हे ॥ ताजि असार संसार

सारबुधि धरत हे ॥ परिहाँ यह वैराग्यअनुप मांनजित मांनि लहतहे ॥ १६ ॥

अथ व्यतिरेकको भेद.

कवित—कामक्रोध भाव जेते सोधिये स्वरूप तेते ॥ पक्क हे अपक्कसेति चित चहुटाइयें ॥ जेते गुणपक्क हे हरख मन तेतिनको ॥ होहिजे अपक्क कोई जोई के मिटाईये ॥ जेसें व्याल कालरूप नाजुक नालास्वरूप ॥ सुधिके संजिवनि सो शत्रुयो घटाइ ये ॥ व्यालसम जगजाल ज्ञानसम बुद्धि नाल ॥ भगवान मंत्र हाल असो चटाइयें ॥ १७ ॥

दोहा—वैराग्य नाम व्यतिरेकयह । विपया भावअभाव ॥ विद्वत मत परमांन हे ॥ शुद्धवृत्तिमनुलाव ॥ १८ ॥

अथ एकइंद्रियको भेद.

अरिल—मनमें इच्छा होई विपयका भोगकी ॥ मन इंद्रियकों रोकि अवस्ता जोगकी ॥ ज्यों दीपक घटछिद्र भिन्नसे पेखियें ॥ परिहां यों मनवृत्ति निवार एक ब्रह्म लेखियें ॥ १९ ॥

दोहा—एक इंद्रिय वैराग्य यह । एकहि एक निरधार । मन इंद्रिय अभिमानताजि ॥ मन मनि मनहि विचार ॥ २० ॥

अथ वसीकारवैराग्यवर्णन.

कवित—लोकहे प्रलोक जोग त्यागियें स्वरूपभोग ॥ लखि लखि महारोग भेदसों प्रकाशियें ॥ सुर नर भोग जान तिन ताप तापमांन ॥ संशय रू शोकमान अतिसें प्रकाशियें ॥ पुन्यकृत लोक जाइ छिनभये परे आइ ॥ कामिक कहे बनाइ लोभ यों विनासियें ॥ भगवान भयो भान निर्मल प्रकाशज्ञान ॥ इंद्रजाल जगमांन बुद्धियों उजासियें ॥ २१ ॥

दोहा—वसीकार वैराग्य यह । ब्रह्म शेष नशेष ॥ तीनभेद यामे प्रगट । ते गुरुगम्यते पेख ॥ २२ ॥

वसीकारवैराग्य तीनप्रकारके हैं.

याके नाम—मंद, तीव्र और तरतीव्र.

मंदको लक्षण.

दोहा—सुत वित्त विषय वियोगतें । त्याग बुद्धिमन होय ॥ धिग धिग धिग हियमें बसे । वैराग्य मंद यह जोय ॥२३॥ छांजन भोजन जनमिलन । यह मुक्ति करि जान ॥ मंदमंद पुनि पाइयें तीव्रपद निरवान ॥ ॥२४॥ मंद करें सतसंग नित्य ॥ पावे सुद्ध स्वरूप ॥ गुरुप्रताप यों पाहियें ॥ ज्यों कीटि भृंगनिरूप ॥२५॥

तीव्रको लक्षण.

अरिल—निशिदिन धरतहि ध्यांन राम जिय भजतहे ॥ देह गेह सुख धांम वाम सुत तजतहे ॥ प्राप्तिप्रगट अभाव अप्राप्ति भ्रमहे ॥ परिहां यह तीव्रवैराग्य जांन निःकर्म हे ॥ २६ ॥

तरतीव्रको लक्षण.

सोरठा—तरतीव्र वैराग्य । अव आगे वरनन करूं ॥ जाके मोटे भाग्य । गुरुप्रतापसो पावहि ॥ २७ ॥

कवित—भुरलोक भुवरलोक स्वर्गलोक जनलोक ॥ महरलोक तपलोक सत्यलोक आदिहे ॥ अतल वितल सोतो सुतल रसातलही ॥ तलातल महातल पाताल हु स्वादिहे ॥ लखे लोक लोक जेते सोक हे संताप ते ते ॥ सुने गुने शिश धुने भोग सुख वादिहे ॥ भगवांन भ्रम नाश्यो जिव शिव एक भास्यो ॥ आपहि मे आप भास्यो अमिरस स्वादिहे ॥ २८ ॥

दोहा—सात लोक पुनि सात तल । चौदह भुवन विचार॥जन्ममरन पुनि होतहे । सो मनमे नहिधार॥२९

प्रश्न

दोहा—प्रथम मंद कहांको भयो । कहांको तीव्रपुनिजान॥तीव्रतर कहांको भयो । सो पुनि करोवखान॥३०

उत्तर

अरिल—प्रथम मंद वैराग्य सो कदरज जांनिले ॥ व्यासपुत्र शुकदेव सो तीव्र मानिले ॥ तीव्रतर वैराग्य-सो भर्तृहरि लेखिये ॥ परिहा एक ब्रह्मपरमांन द्वैत नहि देखिये ॥ ३१ ॥

दोहा—यह वैराग्यविधानहे। कह्यो अल्प विस्तार॥ विवेक आदि अबहि कहुं। तीनो भेद विचार ॥३२॥

अथ विवेकवर्णन.

अरिल—बिंबपद प्रतिबिंब एकपद कीजिये ॥ यह विवेक परमांन जुगति जुगजीजियें ॥ बहुविवेक तजि सेक विवेक विचारियें ॥ परिहा यह विवेक निरधार द्वैतभर्मजारियें ॥ ३३ ॥

चौपाई—घट मठ एक मृत्तिकाजांनो ॥ पटस्वरूप सब तंतु बखानो ॥ कंचन आभूषण सब ऐके ॥ ज्यों जलफेन तरंगनिसेके ॥ ३४ ॥ योंहिं चैतंन जगत प्र-कासे ॥ स्थावर जंगम जगत आभासे ॥ मुकुरमहेल ज्यों बिंब अनेका ॥ शुद्ध विवेक अनेकनएका ॥३५॥ वैराग्य विवेक कहे समझाइ ॥ समजेतेंसंशयसबजाई ॥ अब पट्संपति भेद बताऊ॥ जाके कहंत परमपद पाऊ॥

अथ षट्संपतिबर्नन.

चौपाई—मनबुद्धिचित्तअहंकारसरूपा ॥ काम कल्पना तिनहि निरूपा॥अंतःकरन कषाय नसाई ॥ सम स्वरूप निरवासना गाई ॥ ३७ ॥

अरिल—इंद्रिय भोग संयोग सर्वथा त्यागिये ॥ तजि विकार व्यभिचार ज्ञानरस पागिये ॥ बाहार भितर एक वृत्ति निश्चल भई ॥ परिहां सम दम द्वै द्रढ जान ओर उपर्ति लई ॥ ३८ ॥

दोहा—अंतर इंद्रिय त्याग सम । बाहिर दम प्रकास॥ बाहिर भिंतर विषय तजी । उपसम यह निरवास॥३९॥

अरिल—शोक मोह अरु द्रोह नेक नहि मानिये ॥ असन पिपासा रूप द्वंद नहि आनियें ॥ स्तुति निंदा आदि वादि सब धर्महे ॥ परिहा यह कलिपत व्योहार भारसब भर्महे ॥ ४० ॥ श्रीगुरुज्ञान प्रमांन जान अरु वेदहे ॥ तिनको समरन ध्यान निरभेदहे ॥ यह श्रद्धा निरधार जांन जिय युक्तिरे ॥ परिहा कहे ग्रहे अरु लहे सर्वथा मुक्तिरे ॥ ४१ ॥ समाधान यह जान आत्मा नित्यहे ॥ संशय अरु विपरीत धरे नही चित्तहे ॥ जेसी वेली चित्र नेक नहि हालही ॥ परिहा देहभाव नसी जाइ सदा त्रियकालही ॥ ४२ ॥

अथ मुमुक्षुबरनन.

दोहा—जगके बंधन ज्ञानतें। मुक्ति होनकी आस॥
आस वास विस्वास तजि। सो मुमुक्षु प्रकास ॥ ४३॥
अर्थधर्म अरु काम पुनि। त्याग पदारथ तीन ॥
सो अधिकारी मोक्षको। महाज्ञान परबीन ॥ ४४॥
यह अधिकारी मोक्षको। शिक्षाको अधिकार ॥
विषै कहु सनबंध पुनि। परम प्रयोजनसार ॥ ४५॥
सोरठा—कह्यो अधिकारि भाव। श्रीगुरुज्ञानप्रताप
तें॥पुनि आनंद गुनगाव।भगवान भांखियो हरखसो४६॥
इति श्री अमृतधाराग्रंथे अधिकारीभेदबर्ननंनाम प्रथमः
प्रभावः १ समाप्तः

दोहा—द्वितीय प्रभाव प्रभावको।मनमहि भयो हुला
स॥कहत सुनत सुख पाइये। निर्मल ब्रह्मविलास॥४७ ॥

अथ विषयबर्नन.

दोहा—आतम चेतन रूपहे। बुद्धि संग जियजान ॥
गुरुमिलि ज्ञान समानपदु। सोई विषय परमान॥४८॥
जैसें सूर्यकि किरनहो । जल थल सबमें भास ॥
स्वच्छ अक्ष प्रत्यक्ष जहाँ। शुद्धस्वरूप प्रकाश ॥ ४९॥
अरिल—शीतकाल जब होय ॥ तोय यों देखिये ॥
पाला गोला ज्ञान ॥ भेद बहु लेखिये ॥ जीव ब्रह्म इक

होइ ॥ द्वैत नहि कोइरे ॥ परिहा मिले ज्ञान तप तेज विषय यह होइरे ॥ ९० ॥ जल ते उठे तरंग ॥ जलहि फिर लीनहे ॥ जीव ब्रह्म यों जान ॥ ज्ञान परवीनहे ॥ ज्यों कांसेका नाद ॥ स्वरूपे एक हे ॥ परिहा जीव ब्रह्म यों लेख ॥ विषय सु विवेकहे ॥ ९१ ॥ जाग्रत बुद्धीवृत्ति ॥ भोग भ्रमि रहतु हे ॥ सुषुपति सुखको मूल ॥ ब्रह्मपद लहतु हे ॥ जगदाकार विकार ॥ वृत्ति उलटाइयें ॥ परिहा प्राप्ती शुद्धस्वरूप ॥ विषय यह गाइयें ॥९२॥

चौपाई—जाग्रत स्वप्न वृत्ति भ्रम कहिये ॥ उलटी वृत्ति सुषुप्ती लहिये ॥ बिंबमांहि प्रतिबिंब समाई ॥ ब्रूडिवृत्ति सो विषय कहाई ॥ ९३ ॥

दोहा—जीव ब्रह्म मिलि परस्पर ।भासे भेद न दोई।। ततूत्वं त्वंतत् एक हे । यह वह वह यह जोई ॥ ९४ ॥

अथ संबंधवर्नन.

कवित्त—संबंधको हे निरूप बोधक बोध्य स्वरूप ॥ प्रकाशी प्रकाशरूप भास भासी जानियें ॥ प्रतिपाद्य ब्रह्मजानो प्रतिपादक ग्रंथ मानो॥जीव शीव एक ठानो वेदमत मानियें ॥ भ्रम भूले आपमांहि आप आपु लहे नांहि ॥ बंध मोक्ष भ्रम तांहि संशय बखांनियें ॥ भग-

वान यह ज्ञान वेद विद हे प्रमान ॥ मलिन संवंध जाहां महासुख खानियें ॥ ९९ ॥

दोहा—जीव शीवकी एकता । संबंधहिते होइ ॥ अल्प भास भासे सवे । प्रगट कहों पुनि सोइ ॥ ९६ ॥

चौपाई—वेदांत शास्त्र संवंध कहिये ॥ सो प्रतिपादक लक्षते लहिये ॥ व्रह्म है प्रतिपाद्यस्वरूपा ॥ वेदांताविदहि कहत निरूपा ॥९७॥ ज्यों अपनो मुख विंव कहावे ॥ प्रतिविंव रूप सु भिन्न रहावे ॥ मुखकी सव सुंदरता भासे ॥ ज्यों प्रतिविंव शुद्ध परकासे ॥९८॥

दोहा—ज्यों रविभास प्रकाश हे । चक्षु अचक्षुनि मांहि ॥ चक्षु निर्मल सो लहे । अन्य लहे नहि तांहें ॥ ॥९९॥ योंहीं व्रह्म प्रकाश हे ॥ शास्त्र स्मृति प्रमान॥ संबंध ज्ञान वेदांत हे । आन आन करि जान ॥६०॥ बोधकरूप सु वेद हे । वोधे जीवस्वरूप ॥ जीव जीवतां मेटिके ॥ ईसहि ईस निरूप ॥६१॥

चोपाई—द्रष्टा करि सव दृश्य प्रकासे ॥ द्रष्टा ज्ञान दृश्य सव नासे ॥ दृश्य उपेक्षा द्रष्टासार ॥ यों संवंध वेद निरधार ॥ ६२ ॥

दोहा—संवंधी संबंध द्वय । वाच लक्ष परमान ॥ वेदवाच संबंध कहि । संवंधि लक्ष निदान ॥ ६३ ॥

अथ प्रयोजन.

चौपाई—प्राप्ती ब्रह्म प्रयोजनसार ॥ अब कछु ताको करूं विचार ॥ विधि निषेध सो अवधि कहावे ॥ अवधि उलंघि प्रयोजन गावे ॥ ६४ ॥

साखी—जाको यत्न करत निसवासर। सोतो पाया ठाम॥यत्नीयत्न एक हो ग्ह्यो।यह प्रयोजन नाम ॥६५॥

दोहा—जल तरंग एके भए।पालो गलि जल मांहि॥ जीव ब्रह्म योंही मिले। और प्रयोजन काहि ॥६६॥

चोपाई—ज्यों को पाकी पाक बनावे॥पाकी पाक तृप्ति पद पावे ॥ क्रिया कलेश करण तब नासे॥ योंही ब्रह्मप्रयोजन भासे ॥ ६७ ॥ गांव नाम पूछत जो भावे ॥ नाम निरूपन गांम सु पावे ॥ गामहि ठाम कियो निरधारा ॥ भयो प्रयोजन कारज सारा ॥६८॥ यो गुरु शास्त्र श्रवनही किन्हा॥ आतम तत्व परम पदचिन्हा॥अब कछु ओर ओर नहि भासे॥ यह प्रयोजन नित्य प्रकासे ॥ ६९ ॥

सोरठा—साधक साधन सिद्ध।करन करावन सब थक्यो॥लख्यो अचल सो निद्ध। यहै प्रयोजनसिद्ध है॥७०

दोहा—सो स्वरूप प्रापत भयो।परगट पूरनकाम ॥ जो स्वरूप सांई लह्यो। यहै प्रयोजन नाम ॥ ७१ ॥

एते साधन प्रगट युत । परमाता सो जान ॥ यह अ-
धिकारी श्रवनको । पट विधि श्रवन बखान ॥ ७२ ॥

सोरठा—कहे चार अनुबंध । शास्त्ररीति वीचा-
रिके ॥ ज्यो मंदिर निरसंध । निगड निवाज जबहि
किये ॥ ७३ ॥ यह चारो दिगबंध । विज्ञान ज्ञान द्रढ
करनको ॥ श्रवन सुने तजि संध । महामोक्षपद
पाईये ॥ ७४ ॥ श्रुति स्मृति अनुसार । सारासार
बर्नन करो ॥ भगवान ज्ञान उचार । ममत मान अभि-
मान तजि ॥ ७५ ॥

इति श्रीअमृतधाराग्रंथे चारअनुबंधबर्ननं
नाम द्वितीयः प्रभावःसमाप्तः २

दोहा—तृतीय प्रभाव बखान यह। श्रवन सुननकी
रीति ॥ सो विधि विधिसो बरनिहों । होय ज्ञानपर-
तीति ॥७६ ॥

अथ श्रवणबर्नन .

चौपाई—उपक्रम ओर जु उपसंहार ॥ पुनि आभास
अपूरवधार ॥ फलपरापती सुनो निदान ॥ अर्थबाद
उपपत्ति बखान॥७७॥पट् विधि श्रवन करे जो कोइ ॥
पट गुन पदको परशे सोइ ॥ उपक्रम कर्म सु प्रथम
बखानुं ॥ आगे पंच भेद पुनि जानुं ॥७८॥

दोहा—जो जाहीते उपजि के।सो फिरि तहांसमाइ॥
आदि अंत उपक्रम कही । संहार नाम ठहराइ॥७९॥

कवित्त—आदि अंत एक जानो जल ज्यों तरंग मानो ॥ बुदबुदा ज्यों विलानो ओर न विचारियें ॥ घट मठ जाति जेते मृतिका स्वरूप तेते ॥ उतपति नाश सेते हेतु हिये धारियें॥ जलकि जुगति जोरि नौन गोन भगी रोरी॥कारज परसि पुनि कारन निहारियें॥ भगवान जग जान आदि अंत ब्रह्म मान ॥ मध्य मध्य भयो भान द्वैतको संघारियें ॥ ८० ॥

दोहा—आदि अंत अद्वैत है।मध्य द्वैत सो होइ ॥
वेदविद यों कहतु हे । समुझे विरलो कोइ ॥८१॥

अथ श्रुतिः

सदेव साम्यंदमग्र आसीदिति.

अरिल—सोम्य शिष्यको जान गुरू यों कहत हे॥ आदि अंत ब्रह्म मान मध्य पुनि लहतहे ॥ भूत भवि-ष्यंत दोइ होय वृतमानरे ॥ परोहा इद अग्रे सत रूप वेदंत जानरे ॥ ८२ ॥

दोहा—दुतिय अंग अभ्यास हे। कहियें ताको रूप॥
यहे युगति जिय जोइये। प्राप्ति ज्ञान स्वरूप ॥ ८३ ॥

चौपाई—सर्व ब्रह्म कहें वेद विचारी ॥ साधु संत

पुनि कहे पुकारी ॥ मैं हों ब्रह्म ब्रह्म सब सोई ॥ ब्रह्म ज्ञान पुनि ब्रह्महि होई ॥ ८४ ॥

अथ श्रुतिः

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥ ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति॥

चौपाई—मेरी दोय अज्ञता नासी ॥ भास्यो ब्रह्म सर्वपरकासी ॥ अब अज्ञान दृष्टि नहि आवे ॥ एक ब्रह्म सब ब्रह्म रहावे ॥८५॥ कंचनके आभूषण होई ॥ कंचनता भूले ब्रह्म सोई ॥ गुरु मिलि ज्ञान भयो परकास ॥ सर्व ब्रह्म उपज्यो अभ्यास ॥ ८६ ॥

दोहा—मैं निर्मल निर्मल सबे। निर्मलदृष्टि प्रमान॥ यह अभ्यास प्रकाश जब। तब दूजा नहि आन ॥ ८७॥ ज्ञान अभ्यासे एक है। ज्ञान करें परमान ॥ तत्वदर्शि काहा कहे। कह न समान कहान ॥ ८८ ॥

चोपई—तजिके अंग अपुरब कहो ॥ जाको कहत मुक्ति पद लहो ॥ ब्रह्म विना को आन बतावे ॥ यहै अपुरब नाम कहावे ॥ ८९ ॥ कंचन विन आभूपन ठाने ॥ मृतिका विना कलश परमाने ॥ ब्रह्म विना को जक्त बखाने ॥ यहै अपूरब ओरन आने ॥९०॥ जल विन फेन तरंगनि गावे ॥ प्रगट रूप विन सूत

रहावे ॥ ब्रह्म विना कछु कल्पे कोई ॥ यहै अपूरव ओर न होई ॥ ९१ ॥

सोरठा—ज्या मकरीमें सूत । साचा जूठा भेद द्वय॥ योंही ब्रह्म अभूत । एक एक सब एक हे ॥९२ ॥

अरिल—यहै अपुरव जान मान जिय एकही ॥ सबे ब्रह्म परमान आन नहि सेकही ॥ ताते फल जो होई कहतहों सोइरे ॥ परिहा ज्यों मर्यादा शील द्वैत नहि कोईरे ॥ ९३ ॥ जा फलते फल जाई लाइ मन तास सों ॥ सुर नर भोग विलाइ चित निरवास सों ॥ अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष फल चारिहें ॥ परिहा यह चारो फल त्यागि सुफलहि निहारि हे ॥ ९४ ॥ झरे बीज अंकूर ज्ञानकी अग्नितें ॥ प्रापति शुद्ध स्वरूप बुद्धिकि लग्नितें ॥ अब कछु ओर न ठोर कहतको कोइरे॥ परिहा अनुभवतें परमान यहै फल होइरे ॥ ९५ ॥

दोहा—अब आगे वरनन करुं। अर्थबाद की रीति ॥ वेद भेद मनु लाइ के ॥ निज अंतरकी प्रीति ॥ ९६ ॥

कवित—वेद भेद लिये वोले कर्म करी कर्म तोले॥ अंतर कपाट खोले नीति रस भाई कें ॥ कर्मभूमि शुद्ध कीजे तामे धारि भक्ति बीजे॥संतमिलि सुख लीजे वित्त चहुटाईकें ॥ चैतन स्वरूप जोहे ज्ञात करि ज्ञान सोहे ॥

व्यापक सकल होहे गुरु ज्ञान पाईकें ॥ यह बाद बादठाने मेरी तेरा सब हाने॥भगवान मनमाने द्वैतको नसाईकें९७

कुंडलियाछंद—शुद्ध मुमुक्षु होइ जो ॥ अर्थवाद परमान॥अर्थवाद परमान॥आन सब आन बिसारें॥कर्म भक्तिअरु ज्ञान॥ध्यान धरि तत्व निहारें॥करें भक्ति भगवानकि ॥ होइ शुद्ध भगवान ॥ शुद्ध मुमुक्षु जानिये ॥ अर्थवाद परमान ॥ ९८ ॥

दोहा—अर्थवाद पूरन भयो।अभ भाखों उपपत्ति ॥ एक एक निरधार करि ॥ श्रुति स्मृतका युक्ति ॥९९॥

चौपाई—ज्यों कंचन आभूपन एके ॥ ज्यों जल फेन तरंगनि सेके ॥ पटस्वरूप सब तंतु बिचारा ॥ अखंड ब्रह्म यहै निरधारा ॥१००॥ ज्यों मिश्रीकी सेना कीन्ही ॥ सब घट एक मिश्रिका चिन्ही ॥ लोहस्वरूप खडग कुठारा ॥ योंही सबघट ब्रह्म पियारा ॥ १०१ ॥ मिलती युक्ति विचारे मनमे॥अहंभाव नहि आने तनमें॥ सबही अंग शरीर कहावे॥योंही पूरन ब्रह्म रहावे॥१०२॥

दोहा—षट विधि श्रवन विचारियें । अद्वैत ब्रह्म निरधार॥ सुनि सुनि के पुनि मनन कार । प्राप्ति मोक्ष दुवार ॥ १०३ ॥

कवित्त—श्रवन श्रवन कीनो मनमेंहि मन दीनो ॥

निजरूप जानि लीनो गुरुके प्रतापतें ॥ मरनको भ्रम नास्यो आपहिमें आप भास्यो॥आनंद अभै प्रकास्यो सोहंहंसो जापतें ॥ मन प्राण प्राण जेते देह इंद्रि बुद्धि सते ॥ सुने मबे नाश तेते थक्यो पुन पापते॥भगवान भाग्य जाग्यो श्रवन मनन पाग्यो ॥ अहंअहंभाव भांग्यो वच्यो त्रय तापते ॥ १०४ ॥

सोरठा—पट विधि श्रवन वखान । अद्वैत ब्रह्म निरधारके ॥ गंगा एक प्रमान । घाट भेदते भेद नहि ॥ ॥१०५॥ जैसें पंकज एक । नील पीत पल्लव कली ॥ नाम भेद नहि सेक ॥ योंही ब्रह्म अभेदहे ॥ १०६ ॥

दोहा—पट विधि श्रवन वखानिके।कह्यो वेद अनुसार॥भगवान ज्ञांन भगवानहे।गुरु मुख सुनि उरधार॥१०७

इति श्रीअमृतधाराग्रंथे पटप्रकारश्रवन-
वर्ननं नाम तृतीयःप्रभावःसमाप्तः॥ ३

दोहा—अव चौथे परभावमें । पंचीकरण निरूप ॥ शिष्य पुछे श्रीगुरु कहे । निरमल ज्ञान अनूप ॥१०८॥

प्रश्न

सोरठा—शिष्यको उपज्यों ज्ञान।सर्व एकही एकहे॥ संशय भयो निदान सोधन पिंड ब्रह्मांडको ॥ १०९ ॥ अथ शिष्य पुछत गुरुजी।पंचीकरन कैसें भयो

चौपाई—शिष्य संशय करि गुरुकूं बूझे ॥ पांच पचीस मोहिकों सूझे ॥ केसें उत्पति इनकी भई ॥ केसें पुनी लीनता लई ॥ ११० ॥ कारज कारण भेद बतावो ॥ मेरे मनको तिमर नसावो ॥ गुनविभाग इंदिय सब कहियें ॥ उत्पति भेद भिन्न क्यों लहियें ॥ १११ ॥

दोहा—शिष्य प्रश्न निर्मल कियो । गुरु आनंद मन भाय । हर्षमान व्है कहत हे ॥ सुनो शिष्य मन लाय ॥ ११२ ॥

उत्तर

अरिल—पिंड ब्रह्मांड विधान जान तुं शिष्य रे ॥ उत्पति भोग विलीन दृष्टि करि देखरे ॥ पंचभूत अनु-सूत अविद्या रूपहे ॥ परीहां सबे असत सत जान सु ब्रह्म अनूपहे ॥ ११३ ॥

दोहा—अध्यारोप करिके कहुं । जीव शीवको भेद । अहंबुद्धि अज्ञानतें । प्राप्ति तीन प्रच्छेद ॥ ११४ ॥ देश काल अरु वस्तुको । कारन हे अज्ञान । जीव शिवता यों लही । ज्यों रज्जु सर्प निदान ॥ ११५ ॥

प्रश्न

चौपाई—शिष्य पुछे गुरुसुहि समुजावो ॥ देश काल पुनि वस्तु लखावो ॥ तीन भेद जीव कहो केसें ॥ तीन ओर ईश्वरके जेसे ॥ ११६ ॥

उत्तर

चौपाई—देस काल वस्तु सुनि शिष्य॥ लक्ष अर्थतें सो अवशिष्य ॥ वाच्य निरूप वाचकुं कहियें ॥ वाच निवारि लक्षता लहियें ॥ तीन देश तीनहि पुनि काला॥ तीन वस्तु सों जीव जंजाला ॥ ईस भेदसो आगें बखानो ॥ जीव शविता प्रथम प्रमानो ॥ ११८ ॥

कवित्त—हृदे कंठ नेन देश चैतन सोहे प्रवेश ॥ जाग्रत स्वप्न जेसें सुषोपति कालहे ॥ बुद्धि इंद्रि प्रान जानो मन आदि वस्तु मानो ॥ वाच लक्ष एक सानो बंध्यो ब्रह्म जालहे ॥ देश देश मिले नाहिं काल काल कांहिं ॥ वस्तु भेद भेद ज्यांहि दिसे चकचालहे ॥ लक्षालक्ष लक्षि भासे त्रिविधि प्रछेद जासे ॥ भगवान भ्रम नाशे जिव ईसता लहे ॥ ११९ ॥

दोहा—देश काल अरु वस्तु लहि । बंध जीवको जान । वाच वाचकहि लक्ष लहि । शुद्ध मोक्ष परमान ॥ १२० ॥ देश काल अरु वस्तुतें । जीव अवर नहि जान । तीन प्रछेद प्रछेद तजि जीव शीव परमान ॥ १२१ तिन भेद पुनि ईशमहि । तातें भयो प्रछेद । वाच भेद माँहि भेद सो । लक्ष लक्ष निरभेद ॥ १२२ ॥

चौपाई—प्रथम देश अव्याकृत कहिये ॥ हिरण्य

गर्भ दूजो सो लहिये ॥ तीजो देश वैराट बखानो ॥ काल वस्तुपुनि आगेजानो ॥ १२३ ॥

दोहा—उत्पत्ति स्थिति कालद्वय । तीजे प्रलय बखान । तीनो गुन सो वस्तुहे । सत रज तम परमान ॥ १२४ ॥ माया भेद प्रछेद सो । चैतनता अनुसूत । वाच त्यागकरि लक्ष धरि । व्यापक एक अभूत ॥१२५ जीव शिव द्वय वाचहे । विक्षेप आवरन जान । लक्ष दुहुनकी एकहे । तत्वं असि परमान ॥ १२६ ॥ अज्ञान एक द्वै भातिको । विक्षेप आवरन मान । विक्षेप भेद आगे कहुं । प्रथम आवरन जान ॥ १२७ ॥

अथ आवरनशक्तिबरनन.

कवित्त—मुकुरके होल मांहि होल भयो स्वान जेसे ॥ स्फटिकके पर्वतसो गज बल हार्योहे ॥ केसरी कुबुद्धिरूप पर्‍यो भर्म जाल कूप ॥ भूल्यो प्रतिबिंब भूप ससे सिंह मार्‍योहे ॥ कपी ज्यों कुबुद्धि माने आपको बंधन जाने ॥ नलिनि सो लाग्यो कीर आप यों बिचार्‍योहे ॥ योहि चित्त गुन भासें माया बुद्धि चिदाभासें ॥ भगवान द्वै विलासै होंहि हो निहार्‍योहे ॥ १२८ ॥

दोहा—आपआप यों भूलिके । छायामाया

मान।गुरु कहे शिष्य सुनि लहे।जीव ब्रह्म जग जान१२९

अरिल—ज्यों केशरी वनमांहि छाय वंदर ग्रह्यो ॥ वंदर विना विवेक मरनको दुख लह्यो ॥ यों माया अरु ब्रह्म नहि संबंधहे ॥ परिहां दुख सुखताकरि ग्रहे लहे सब धंधहे ॥ १३० ॥

दोहा—जेसें रज्जुको सर्प हे अध्यारोप प्रमान ॥ सुनि विचारि जूठो कियो । यह अपवाद निदान ॥ ॥ १३१ ॥ चैतनमें परपंच त्यों परपंच रचित हे भेद॥ नेति नेति पुनि कहतहे । लहत जमूरा भेद १३२ ॥ बाजीगर बाजी करे । जग मोहनकी आश ॥ भेद जमूरा लहत हे । योंही वेदविलास ॥ १३३ ॥ ज्यों पट चित्र बनाइये । प्रथम अहार लगाइ ॥ यों माया आरोप करि । तब कछु बचन कहाइ ॥ १३४॥ विधि निषेध करिके कहुं ॥ लहुं सु दोय स्वरूप ॥ विधि निषेध विशेष तजि ॥ प्राप्ति ज्ञान अनूप ॥ १३५ ॥ निषेधरूप पीछे कहों॥ विधि पहिले परकाश ॥ दोनो पक्ष लक्ष वेदतें ॥ सगुण निर्गुण भास ॥ १३६ ॥

श्रुतिः

एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः॥इति श्रुतेः

चौपाई—चैतन एक अखंड प्रकाश ॥ तामे नही

द्वैतको भास ॥ माया शक्ति मानिये तामे ॥ गुणप्रवाह भेद बहु जामे ॥ १३७ ॥ त्रिधारूप माया पुनि धारा ॥ सत स्वभाव चैतन अनुसारा ॥ सत रज तम त्रय गुण जो कहिये ॥ भेद भये वहु भेद सुलहिये॥१३८॥

दृष्टांत.

दोहा—सोनो रूपो मृत्तिका। तीनो कलश बनाइ॥ जलउपाधि घट भेदसो।दिनकर त्रिविधि रहाइ॥१३९॥

सोरठा—सत्व रज तम घट जान।जल स्वरूप माया तहां॥चैतन पूरन भान। उपाधिभेदते भेद सो ॥१४०॥ चैतन एक निदान ॥ भासे त्रिविधि प्रकार जग ॥ तावत् जीव अज्ञान ॥ करत कर्म विभागसो ॥ ४१ ॥

चौपाई—शुद्ध सतोगुन मायारूप ॥ तामें चैतन बिंब अनूप ॥ बिंबनामसो ईश्वर कहियें ॥ नित्यमुक्त ताहिको लहिये ॥ १४२ ॥ मायाभास रजोगुन जानि॥ प्रतिबिंब जीव तहां पहिचानि ॥ तम गुन मांझ भासहे सोइ ॥ ताते रीति जगतकी जोइ ॥ १४३ ॥

दोहा—तमको ईक्षणता करी। ईश्वर दृष्टिय सारि ॥ प्रथम प्रगट आकाश भयो। सत पुनि असत विचारि ॥ १४४ ॥ वायु प्रगट आकाशते। तेज वायुते जान ॥ तेज आप अपते धरा । सूक्ष्म भूत प्रमान

॥१४५॥ लिंगदेह बरनन कर्यो ॥ पंचभूत अनुसूत॥ असत रूप माया तहां ॥ सत सो ब्रह्म अभूत ॥१४६

चौपाई—आकाश अंशकि इंद्रिय दोई ॥ श्रोत्र वाक नाम तिहि होई ॥ श्रोत्र ज्ञान श्रवनको करे ॥ सुनि पुनि वांकवचन उचरे ॥ १४७ ॥ वायु लिये द्वै इंद्रिय भास ॥ त्वचा एक दूजा कर जास ॥ स्पर्श ज्ञान त्वचा करि जाना ॥ पाणि क्रिया सो ग्रहण बखाना॥ ॥ १४८ ॥ तेज प्रगट द्वै इंद्रिय भासे ॥ चक्षु पाद द्वै नाम प्रकासे ॥ रूपरंग सब चक्षु लखावे ॥ पाय तिहां देखन चलि जावे॥ १४९॥इंद्रिय दोइ आपकी कीन्ही॥ रसना उपस्थ नाम सो चिन्ही ॥ रसना रसके भोजन करे ॥ उपस्थ आनंद विषयते धरे ॥ १५० ॥

दोहा—पृथ्वीतत्वते प्रगट हे । द्वै इंद्रिय परमान॥ गंधज्ञान नासा करे । गुदा तजे मल जान ॥ १५१ ॥ सतगुनके परभावते । ज्ञान इंद्रि भइ पंच ॥ रजगुन अंश प्रसंशते । उंच क्रिया पुनि संच ॥ १५२ ॥ पंच वायुकी वृत्तिहे । तिनको सुनो बखान ॥ प्रान अ-पान समान हे । उदान व्यान परमान ॥ १५३ ॥ उतपति हे रज अंशते । पंचभूत अनुसार ॥ ज्यों ज्यों जिनके धर्महे । निश्चे सुनो विचार ॥ १५४ ॥

कवित्त—प्रानको क्रिया प्रकाश ह्दे देह हरख वास ॥ उपजे क्षुधा पिपास त्रिगुन के भाइके ॥ गुदा-विशे मल भासे अपानहे नाम जासे ॥ नाभिमें बसे समान अंनको पचाइकें ॥ कंठ स्वासोस्वास जाको उदान हे नाम ताको ॥ व्यान बसे सर्व अंग रसको मिलाइके ॥ पंच भूत युत पाइ प्रगटहे पंच वायु ॥ भगवान मान बंध मुक्ति मुक्ति पाइके ॥ १९९ ॥

सोरठा—पृथ्वी अंश अपान । अनुभवते परमा-नहे ॥ पंच तत्व गुन ज्ञान । इनमें प्रगट प्रकाश हे ॥ १९६ ॥ व्यान आकाशें जान । उदान जान पुनि वायुते ॥ प्रान तेज परमान । समान जान जल अंशतें ॥ १९७ ॥

दोहा—साधारन कारन प्रगट । वृत्तिभेद भये पंच। पंचभूत अनुसूततें । कर्म क्रिया पुनि संच॥ १९८ ॥ सतगुन अंश प्रसंशतें । मन बुद्धि द्वै निरधार । सर्व समुच्चय लहतहे । पंचभूत अनुसार ॥ १९९ ॥ संकल्प वृत्ति मन कहतहे । शुभ पुनि असुभ विचार । निश्चे विविध प्रकारको । बुद्धि वृत्ति निरधार ॥ १६० ॥ वृत्ति भेदतें द्वै कहे । हे निज एकस्वरूप॥ पाठक पाचक विप्र जो ॥ कहिये कर्मनिरूप ॥१६१॥

चौपाई—ज्ञान इंद्रिय पांचो परकास ॥ पंचइंद्रिय पुनि कर्मनिवास ॥ पंचप्राण मन बुद्धि प्रकासे ॥ दस अरु सात लिंग आभासे ॥१६२॥

दोहा—लिंगदेह प्रगट भयो । गुरु लखायो ज्ञान ॥ कछु शिष्यको संशय भयो । पुछै प्रश्न निदान॥१६३॥

प्रश्न

दोहा—पंच वायु गुरु तुम कहे।पंच रहे पुनि गूढ॥ दसविधिके दश कहतहे । दृष्टि किधों छे गूढ ॥१६४॥

उत्तर

चौपाई—शिष्यको संशय गुरु सुन लियो ॥ फिर ताको तब उत्तर कियो ॥ पंच वायु तुं नीके जान ॥ पंच ओरते कहूं बखान ॥ १६५ ॥ प्रथम धनंजय वायु बताउं ॥ देवदत्त क्रकल समजाउं ॥ कर्म वायु नाग पुनि जान ॥ क्रिया कर्म पुनि करूं बखान॥१६६॥

छपयछंद—नाग करे उद्गार । कूर्म पल पल लगावे ॥ क्रकल क्रिया यह जान । छींक छिन छिन उपजावे ॥ देवदत्त व्योहार । प्रगट जंभाइ आवे ॥ वायु धनंजय जान । मृतककी देह फुलावे ॥ सबे अनातम धर्महे । त्रिगुणमय व्योहार ॥ भगवान मान सोई वंधहे । मुक्त मुक्ति निरधार ॥ १६७ ॥

दोहा—साधारन कारन यह। सूक्ष्म सूक्ष्मका भास॥ इनको निरनो सो कहे। जिनको ज्ञान प्रकास ॥१६८॥

छपयछंद—आकाश भामते प्रगट हे। वायु धनंजय रूप ॥ देवदत्त शुभ तत्व ते। वायु सुवाय अनूप ॥ ऋकल तेज तप ताप । आप कूर्म रहावे ॥ पृथ्वितत्वतें प्रगट। वायु सो नाग कहावे ॥ पंच भूत अनुसूत हे । अनुभवते परमांन ॥ भगवान ज्ञान सोई ज्ञानहे। ओर सवे अज्ञान ॥ १७० ॥

दोहा—पंचवायुमे पंचहे । अंतर अंतर जान ॥ कारज कारन रूपहे। ज्यों पट सूत निदान॥१७१॥ ताते गिनती पंचहे। विचार ज्ञान दश धार ॥ मुख्य गवन द्वै भेदहे। वेद वदे निरधार ॥ १७२ ॥ पंच तत्व दश वायु हे । कहियें ताकां भेद ॥ भिन्न कहे पुनि एकहे। वरनि कहे ज्यों वेद ॥ १७३ ॥

छपय—देवदत्त उदान। वायुकी वाय कहावे ॥ प्राण ऋकल यह जान। वायु सां तेज रहावे ॥ कूर्म वायुसमान । जलकि युक्ति विचारा ॥ नाग वायु अपान। जान निज पृथ्वि धारा ॥ पंच भूत अनुसूत सवे। लह्यो ज्ञान भगवान ॥ प्रथम वायु आकाशकी। व्यान धनंजय जान ॥ १७४ ॥

दोहा—श्रीगुरु ज्ञान प्रमानिकें । संशय दियो नसाइ ॥ यह शिष्य सिख सुन लही । कछु पुछन मन लाइ ॥ १७५ ॥

प्रश्न

चौपाई—शिष्यकों संशय उपनो आई ॥ गुरु कृपा करि दहो नसाई ॥ मन अरु बुद्धि दोइ क्यों कहे ॥ कोइ विधि चित चारि करि लहे ॥ १७६ ॥ चारि कहे सो कोन विचार ॥ केसें किये तुम दोइ निरधार ॥ इनको भेद प्रगट करि कहिये ॥ श्रीगुरु ज्ञान मोक्ष पद लहिये ॥ १७७ ॥

उत्तर

चौपाई—शिष्यको संशय गुरु सुनि लियो ॥ तब ताको फिर उत्तर दियो ॥ द्वय अरु चार भेद समु जाऊ ॥ गुप्त प्रगटको ज्ञान लखाऊ ॥ १७८ ॥ साधारन कारन यह कहियें ॥ पंचभूत त्रयगुनतें लहिये ॥ अंत करन एक निरधारा ॥ वृत्तिभेदतें चार विचारा ॥१७९॥ आकाश प्रथम अवकाश निवास॥चार तत्व पुनि प्रगट प्रकास ॥ मन बुद्धि चित्त अहंकार कहावे॥ चारे तत्व कि वृत्ति लखावे ॥ १८० ॥

सोरठा—चितहे वायु स्वरूप । चिंता विविध

विचारहे ॥ अहं हे अग्नि अनूप । अहं कृति जहांलो स्फुरे ॥ १८१ ॥ मन उतपति जल जानि । सकल वृत्ति जित कित करे ॥ प्रथ्वि अंश बुद्धि मानि । धरा धर्म धीरज धरे ॥ १८२ ॥

दोहा—मुख्य नामते मुख्य ग्रहे । गवन गवन निरधार ॥ मन बुधि ए द्वय मुख्यहे । गवन चित्त अहंकार ॥ १८३ ॥

चौपाई—अहंकार मनमें निरधार ॥ अहं संकल्प एक विचार ॥ बुद्धि अरु चित्त एक करिजानो ॥ चिंता तजि निश्चय परमानो ॥ १८४ ॥ अंतःकरन पंच वृत्ति ग्रहो ॥ पंच तत्वतें प्रगट लहो ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गंधा ॥ इनहि आदि वहु भोग निबंधा ॥१८५॥ करता कर्म क्रिया आभासें ॥ मनबुद्धि मिलि सब भोग प्रकाशें ॥ पंचभेद पुनि ओर लखाऊं ॥ पंच तत्व गुनकर्म बताऊं ॥ १८६ ॥

कवित्त—आकाश प्रकाश भास लोभको स्वरूप जास ॥ अंतर इंद्रिनिवास अनुभे प्रमानियें ॥ वायुको स्वरूप काम चित्त वृत्ति हे आराम ॥ क्रोध गति तेज नाम अहंतें बखानियें ॥ मोह रूप जल जानो मनसो स्वरूप मानो॥प्रथवी प्रगट होइ बुद्धिवृत्ति ठानियें ॥

भगवान भयो ज्ञान पंच तत्वसो समान ॥ गुन कर्म कर्म जान सबमे समानियें ॥ १८७ ॥

दोहा—लिंग देह बरनन कर्यो । विविध भांति परकास ॥ ज्यों अधिकारी मोक्षको । होय मोक्ष सुख तास ॥ १८८ ॥

सोरठा—सूक्ष्म देह सु एह । भोग संयोग वियोग बहु ॥ स्थूल होय जब देह । द्वय मिलि भोग प्रसिद्धता ॥ १८९ ॥ लिंगदेह यह जान । स्थूल देह आगे कहूं ॥ कहे भाखि भगवान । शुद्ध ज्ञान गुरु गम्यतें ॥ १९० ॥

इति श्रीअमृतधाराग्रंथे लिंगदेहबरननं
नाम चतुर्थः प्रभावः समाप्तः ॥ ४ ॥

दोहा—पंच पंच विभागसो । कहो पांच पचीस॥ पिंड ब्रह्मांड बखानिके । जीव ज्ञान पुनि ईस ॥ ॥ १९१ ॥

अथ स्थूलदेहबरनन.

चौपाई—लिंग देह मिलि कर्म कमावे ॥ तिन कर्मनकि देहसु पावे ॥ पुन्यकर्म सुर पुर रहावे ॥ पाप पशु मिश्रीत नर गावे ॥ १९२ ॥ चारि खानि चोराशी जाति ॥ सूक्ष्म रूप भ्रमे बहु भांति ॥ पिंडब्रह्मांड

विचारि बखानु ॥ चौदह भुवन जगत प्रमानु॥१९३॥ पंच भूत हे कारनरूपा ॥ तिनतें कारज विविध स्वरूपा ॥ दस अरु सात लिंग आभासें ॥ पुनि स्थूल पचीस प्रकासे ॥१९४॥

दोहा—पंच भूत जे मूल हे । ईश त्रिये द्वय खंड ॥ प्रगट जीवके भोगकूं । रच्यो पिंड ब्रह्मंड ॥१९५॥

सोरठा—अर्ध अर्ध वीहाय । पंच दुहुन पुनि दस भये ॥ पांचो धरे उठाय । पंच चोक पुनि विश भये ॥ १९६ ॥ पुनह फिरि पंच मिलाई । पंचवीश पचीस भये ॥ शिष्य पुछे सत भाई । पांच पचीस विभागसां ॥ १९७ ॥

प्रश्न

सोरठा—पंच पंचके अंश । मुख्य गवन समजाइये ॥ श्रीगुरु कहो प्रसंश । ज्यों संशय नाशे सबे॥१९८॥

उत्तर

सोरठा—प्रथ्वी अप अरु तेज । वायु विलास आकाश मिलि ॥ कठिन द्रव्य तप हेज । संचर स्थिर प्रमान हे ॥ १९९ ॥

चौपाई—अस्थि मांस अरु नाडी जानी ॥ त्वचा रोम क्षिति पंच प्रमानी ॥ रेत पीत स्वेद मिलि लार ॥

रक्त सहित जल पंचविकार ॥२००॥ क्षुधा तृषा निद्रा गुण रूप ॥ कान्ति आलस तेज अनूप ॥ धावन धर्म वायु प्रसारा ॥ उठनचलन संकोच विचारा ॥२०१॥ शीर अरु कंठ हृदे अवकास ॥ उदर गुह्य आकाश निवास ॥ एक मुख्य चारों मिलि गवना ॥ समष्टिव्यष्टि उपजे द्वै भवना ॥ २०२ ॥

प्रश्न

चौपाई—श्रीगुरु ज्ञान शिष्यकों दीन्हो ॥ शिष्य समझि पुनि प्रश्नहि कीन्हो ॥ कोन मुख्य पुनि कोन प्रवेशा ॥ मम तुम शरन करो उपदेशा ॥२०३॥ अस्थि मुख्य पृथ्वी कों जानो ॥ मांस उदक गवन पहिछानो ॥ नाडीरूपहि तेजको अंगा ॥ त्वचा रूप द्वय वायु प्रसंगा ॥२०४॥ रोम स्वरूप शून्य आकाशा ॥ चारि गवन मुख्य एक प्रकाशा ॥ रेत मुख्य आपको जानो ॥ पोत तेज सो गवन बखानो ॥२०५॥ प्रस्वेद वायु लार आकाशा ॥ रक्त रूप पृथ्वी परकाशा ॥ क्षुधा रूपही मुख्यहे तेज ॥ तृषावायु पुनि गवन कहेज ॥ २०६ ॥ निद्रा नभ हे शून्यसमाना ॥ कान्ति जल आलस क्षिति जाना ॥ धावन धर्म वायु मुख्य कहिये ॥ प्रसरन गवन आकाशहि लहिये ॥२०७॥ उठन धर्म सो तेज सुभाई ॥ चलन

गवन गति आप रहाई ॥ संकोचन पृथ्वी परमाना ॥
गवन चारि मुख्य एक रहाना ॥ २०८ ॥

सोरठा—चारो तत्व निरूप । स्थूल भासतें भास करि॥पंच आकाश अनूप।कहो बुद्धि अनुमानतें॥२०९

चौपाई—शिर आकाश मुख्य करि जाना ॥ कंठ वायु सो गवन प्रमाना ॥ हृदये आकाश तेजप्रधाना ॥ उदर आप गुरुगम्य ते जाना ॥ २१० ॥ कटि अवकाश अवनिको वासा ॥ यह विधि मिलि आकाश विलासा॥ और मतांतर भेद लखाऊं॥ नभके पंच भेद पुनि गाऊं ॥२११॥ लोय लिये आकाश प्रकाशे ॥ कामकल्पना वायुविलासे ॥ क्रोध अग्नि जल मोहनिवासा ॥ मद मच्छर अवनि आभासा ॥ २१२ ॥

दोहा—और ग्रंथको मत कह्यो।समुझे बुद्धि निहार। प्रथम पक्षसो मुख्यहे । और गवन निरधार ॥२१३॥ पिंड ब्रह्मांड विभाग द्वय । कहें बेद अनुसार ॥ चोराशि लक्ष योनि लखि। खानि चार निरधार॥२१४॥

सोरठा—सुर नर असुर प्रमान। पशु पक्षी कृमि किट सबे।सत अरु असत प्रमान। पंचिकरन विभागमे॥२१५

दोहा—स्थूलदेह करि भोगवे । लिंग देह अनुसूत। असत अविद्या भूत सब। सतसो ब्रह्म अभूत॥२१६॥

चौपाई—ज्यों यह ज्ञान गुरु परकाश्यो ॥ शिष्यको संशय तुरत विनाश्यो ॥ उतपति रूप भेद सब जाना ॥ लयप्रकार पूछत परमाना ॥ २१७ ॥

प्रश्न

चौपाई—कौंन तत्वको कोन स्वरूपा ॥ श्रीगुरु मोसे कहो निरूपा ॥ कैसे कारज कारन लहिये ॥ लघुदीर्घ पुनि कैसे कहिये ॥ २१८ ॥

उत्तर

चौपाई—शिष्यको प्रश्न गुरु मन धार्यो ॥ फिर उत्तरको हेतु विचार्यो ॥ जाको जेतो स्वरुप बताऊं ॥ कारज कारण भेद लखाऊं ॥ २१९ ॥

अरिल—चैतन महाअपार पार नहि पाइयें ॥ एक ठोर प्रमान शक्ति पुनि गाइयें ॥ शक्ति अंश प्रसंश भाग दस होइरे ॥ परिहा एक ठोर आकाश सो कारज जोइरे ॥ २२० ॥ सो नभ हे दश अंश प्रसंश बखानियें ॥ एक ठोर हे वायु सु कारज जानियें ॥ वायु भये दस भाग जान गुरु ज्ञानतें ॥ परिहा एक ठोर हे तेज सो कारज जानतें ॥ २२१ ॥

दोहा—दसो अंश पुनि तेज हे। एक ठोर जल जानि। कारन रूपी तेज हे। कारज जल सो बखानि ॥२२२॥

सो दश अंश प्रसंश जल । अवनि एकहि स्थान ॥ लघु तें लघु बरनन कियो। कारज कारन मान॥२२३॥ सो अवनि दस अंशहे। एक ठोर ब्रह्मंड ॥ माया जग कारज सबे । कारन ब्रह्म अखंड ॥ २२४ ॥ सत्य स्वरूप हे आतमा। जाते सत सो जोइ ॥ सत्य स्वरूप न्यारो कियो। असत अविद्या होइ ॥२२५॥

चौपाई—जब सब सत्ता भिन्न कर लीनी ॥ तब सब असत अविद्या चीनी॥ ब्रह्मानंद जगत यों दीठो ॥ जैसें चुन खांड संग मीठो ॥ २२६ ॥ चेतन सत्ता सबनि में भासे ॥ सर्व जगत चेतनमें वासे ॥ तुहे ब्रह्म आ नहि आना ॥ सर्व ब्रह्म वेदते जाना ॥ २२७ ॥

अथ श्रुतिः

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन.

चौपाई—सर्वशब्दते तु नहि न्यारा ॥ सर्वमे तु सब निरधारा॥उक्तियुक्ति यह ज्ञान लखायो॥गुरुमिलि शिष्य परमपद पायो॥२८॥पटविधि वहुविधि श्रवन सुनायो ॥ शिष्यको संशय दूर नसायो ॥ शिष्य कछु प्रश्न करेज्युं विचारी ॥ श्रीगुरु मनन कहो निरधारी ॥ २२९ ॥

प्रश्न

दोहा—श्रवन श्रवन करि सुनि लियो। गुनिवेकी

जिज्ञास ॥ मन मानि मनन विचारिये । सो गुरु कहो प्रकाश ॥ २२७ ॥

उत्तर

चौपाई—श्रीगुरु प्रश्न प्रश्न करि भयो ॥ मनन विचार कहन सो ल्ह्यो ॥ मनन स्वरूप नामतुं शिष्य ॥ श्रवन युक्ति सब अंतर दिष्य ॥ २२८ ॥

दोहा—श्रवन सुन्यो तो मनन धर्यो । अंतर अंतर त्याग ॥ भगवान ज्ञान मन मानिये । मनन मनन रस पाग ॥ २२९ ॥

इति श्रीअमृतधाराग्रंथे षट्विधिश्रवनबरननं नाम

पंचमः प्रभावः समाप्तः ॥ ५ ॥

दोहा—पंच प्रभाव प्रभाव करि । गुरू लखायो ज्ञान ॥ अब आगे बरनन करूं । मनन मनन भगवान ॥ २३० ॥ कारज कारन एक करी । पिंडब्रह्मांड समोइ ॥ तरंग फेन बुदबुदनही । पाला पुनि जल होइ ॥ २३१ ॥

अरिल—महाकाश घटाकाश एकहि जानियें ॥ घट भ्रम भूले भेद भेद नहि मानियें ॥ जीव ब्रह्म नहि भेद कहत हे वेदरे ॥ परिहा पिंड ब्रह्मांड अखंड नही पर छेदरे ॥ २३२ ॥

कवित्त—मनन मनन जान मननहि हे प्रमान ॥

~8८।८७

ज्ञानको प्रकाश भान द्वैत नही तासमें ॥ रवितें विमुख जेते रैनदिन कहे तेते ॥ लहे रवि संग अंग रहे तम नाशमे ॥ जे जन विचारहीन कर्मकरे सदा दिन ॥ होहि क्योंहि मन लीन ब्रह्मानंदवासमें ॥ भगवान भयो ज्ञान मननहि हे प्रमान ॥ जीव शीव तो समान वेदके समासमें ॥ २३३ ॥

अथ श्रुतिः.

तत्वमसि । सामवेदस्य

सोरठा—मनन भास जब होई । तब मन रूप न पाईये॥मन मन माहि समाई।द्वैत भेद भासे नहि २३४

प्रश्न

सोरठा—गुरु लखायो ज्ञान । श्रवन मनन बहु भेद सों ॥ निदध्यासन को नाम । शिष्य पुछे श्रीगुरु कहे ॥ २३५ ॥ उत्तर

सोरठा—श्रीगुरु ज्ञान प्रमान । शिष्य लह्यो लहिकें कह्यो ॥ निदध्यासन यह जान । अलह लहे सबलही तजे ॥ २३६ ॥

कवित्त—जेसें जीव जग मांहि मानि मानि रहे तांहिं ॥ अहं अहं तजे नाहिं नाश बुद्धि धारी हे ॥ मनुष्य स्वरूप जाने भूलहिते पशु माने ॥ जाती कुल

गोन ठाने नर तां निहारी हे ॥ जेसें अज्ञ पंडितकुं विप्रकोंज्यु शौद्रपद ॥ पतिव्रता उरवशी कहतमें गारी हे ॥ यह भास निदध्यास अद्वैतमै द्वैतनाश ॥ भगवान् स्वयं जास भेद भयो जारी हे ॥ २३७ ॥

दोहा—देह आतमा ज्ञान वत।अंतर ज्ञान कराइ ॥ निदध्यास अध्यासतें । सोहं ब्रह्म समाइ ॥ २३८ ॥ सोहं सोहं एक हे । द्वैत भेद नहि कोई ॥ सोहं शब्द परोक्ष हे । अयं प्रतक्षहि जोइ ॥ २३९ ॥

अरिल—तत्पद हे सो ईश परोक्षहि जानियें ॥ त्वंपद जीवहि जानि प्रत्यक्ष प्रमानियें ॥ तत्त्वं त्वंतत् एक होई यह ज्ञानरे ॥ परिहा निदध्यासनको रूप वेदतें जानरे ॥ २४० ॥

चौपाई—श्रवन मनन निदध्यास कह्यो ॥ निर्मल ज्ञान शिष्य सुनि लह्यो ॥इतनो ज्ञान हृदयमें धाऱ्यो॥ कछु पुछनको हेतु विचाऱ्यो ॥२४१॥

अथ श्रुतिः.

देहात्मज्ञानवत् ज्ञयं देहात्मज्ञानबाधितं।

चौपाई—निदध्यासन अध्यास भयो एही॥ब्रह्मविचार अगाध पऱ्यो देही ॥ साक्षात्कार विचार सो आगे॥ शिष्यस्वरूप परम रस पागे ॥२४२॥

प्रश्न

सोरठा—तत्पद त्वंपद दोइ। पिंडब्रह्मांड विभागद्वै॥ जिव शिव क्यों इक होइ। असिपद क्यों पुनि पाइये ॥ २४३ ॥ मठाकास घटाकास। महाकास पुनि कहतहे ॥ तीनो भेद निवास। एक कह्यो सोइ एक हे ॥ २४४ ॥ ईश्वर हे सर्वज्ञ। उत्पति स्थितिहि लय करन॥ जीव तहां अल्पज्ञ। इनहि एकता क्यों लहे॥

उत्तर

चौपाई—उत्तम उत्तर गुरु परकासे ॥ सुनत शिष्यको संशय नासे। तत्पद त्वंपद तोहि समजाउं ॥ समष्टि व्यष्टिको भेद लखाऊं ॥ २४६ ॥

दोहा—जीव ब्रह्म अरु ईश कही। तत्पद त्वंपद भास। जीव शीवकी एकता। ब्रह्म असी परकाश॥४७।

दृष्टांत

सोरठा—चूना हरदि दोइ। रोचन नाम न पावही॥ एक रंग जब दोइ। तब रोचन गेचन सही ॥२४८ ॥ रोचनमें द्वै नाश। चूना हरदि भेद नही ॥ द्वैपद एकहि वास। असि आसिपद होइ तब ॥ २४९ ॥

चौपाई—तत्पद त्वपदं जावत कहिये ॥ तावत असिपद भेद न लहियें ॥ ततत्वं त्वंतत एक मिलावे ॥

द्वय पद मेटि असीपद पावें ॥ २९० ॥

दोहा—वाच भेदतें भेद सो । लक्ष लक्ष निरभेद ॥ वाच त्यागकरि लक्ष धरि । यों भासतहे वेद ॥२९१॥

प्रश्न

चौपाई—वाच लक्ष करि गुरु समजायो॥शिष्य कछु संशय फेरि उठायो॥वाच विचारि कोंन विधि तजिये॥ लक्ष लक्षता कैसें भजिये ॥ २९२ ॥

उत्तर

दोहा—वाच वाच करिकें कहो ॥ लक्ष लख्यो नहि जाइ ॥ लक्षस्वरूप अरूप हे ॥ शाखाचंद्र लखाइ ॥ ॥२९३॥ शाखा वाच स्वरूप हे ॥ चंद्र लक्षता जान ॥ वाच लक्ष संबंध भयो ॥ ज्ञान द्रष्टि परमान ॥ २९४ ॥

अथ तत्पदवाचबरनन.

अरिल—तत्पद वाच विलास प्रथमहि गाइयें ॥ पुनि त्वंपदको भेद वाच समुझाइयें ॥ वाच कहे शुभ लहे लक्षको भेदरे ॥ सो वरनो निरधार सार ज्यों वेदरे ॥२९५

चौपाई—तत्पद शुद्ध स्वरूप हे ब्रह्म ॥ निर्विप सोहे निह भ्रंम ॥ माया भेद भेद सो लहियें ॥ वाच विशेष विशे न ग्रहियें ॥ २९६ ॥ ईश्वर जगको कारन जानो ॥ सर्व रूप सर्वेश्वर मानो ॥ करुणामय भक्त

हितकारि ॥ यह स्वरूप वाच निरधारि ॥ २८७ ॥

कवित्त—वाचको विशेष जानो भिन्न भिन्न द्वै बखा-
नो ॥ लखे बहि आप ज्ञान ईश बुद्धि धारीहे ॥
दानवको नासन सुखासन सु देव निको ॥ सेवकको
सेवक सो प्रीति यों विचारीहे ॥ गोपी ग्वाल बाल हेत
गिरीकों उठाइ लेत ॥ निगम कहे नेति यह भ्रम भारीहे ॥
वाचिक मिल्योहे वाच गजज्ञान खुच्यो खाच ॥ भग-
वान यह साच निंद्राको भिखारीहे ॥ २८८ ॥

दोहा—निंद्रावश्य भ्रम स्वप्न ज्यों । भयो भिखारी
भूप ॥ वाच मिलि लहि ईशता । विचर्‌यो ब्रह्म स्वरूप
॥ २८९ ॥ कारणता हे वाचमें । अंतरजामी भाव ॥
भक्तवच्छलता मानि पुनि । लह्यो रूप अरु नाव ॥
॥ २९० ॥ रूप चतुर्भुज ता लही । सही सहस्र शुभ
नाम ॥ सेवक सेव्य विभागमें । यज्ञ पुरुप सुख धाम
॥२९१॥ जन्म कर्म शुभ वाचमें । उत्तम गुन व्योहार॥
ईश वाच यह जानियें । शुद्ध सतो गुन धार॥ २९२ ॥
वाच भेद माँहि भेद बहु । कछु कछु कहो सुनाइ ॥
लक्ष भेद कहे लक्षिको । निर्विकल्प मनलाइ ॥ २९३

प्रश्न

चौपाई—शिष्य कहे गुरु कहो विचारी ॥ लक्ष भेद

कैसे निरधारी ॥ वाच वचन मन प्राप्ति अक्ष ॥ वाणी मनसा लहे न लक्ष ॥ २६४ ॥

अथ श्रुतिः.

यतो वाचो निवर्त्तंते अप्राप्य मनसा सह ॥

चौपाई—ध्यान स्वरूपी मन नहि आवे ॥ नाम भेद वाचा नहि गावे ॥ यह रूप सब भेद निवारे ॥ एसो रूप शिष्य क्यों धारे ॥ २६५ ॥

अथ श्रुतिः.

न चक्षुर्न पादो न रसना न घ्राणौ.

चौपाई—नेन वेन नासा नहि घ्राना ॥ मन वाणी नहि करत प्रमाना ॥ अलख रूप लख्यो नहि जाई एसि प्राप्ति कही विधि गाई॥२६६॥निज जन जानि अरथ प्रकाश्यो ॥ मेरे मनको भ्रमविनाश्यो ॥ २६७ ॥

उत्तर

दोहा—शिष्य प्रश्न उत्तम कियो । लियो गुरु उर धारी ॥ लक्ष लखावन युक्ति सो । सो पुनि कहूं विचारी ॥ २६८ ॥

चौपाई—श्रीगुरु कहे सुनो शिष्य सोई ॥ वेद वचन द्वै विधि कहोइ । साक्षात्कारकी श्रुती करावे । निषेध भेद मन वचनहि गावे । उपदेश अरथ पुनि

वेद कहतुहे ॥ मन निर्मलकरी ब्रह्म लहतु हे॥ मन देखे मन सुने विचारे । मनहि शुद्ध स्वरूप निहारे॥ २७० ॥

अथ श्रुतिः.

मनसैव तु द्रष्टव्यं मनसैव श्रोतव्यं मनसैव मंतव्यं.

चौपाई—तातें मनकूं निर्मल कीजें ॥ इंद्रिय भोग चित्त नहि दीजें ॥ शुद्ध लक्षणा होवे एसी ॥ शाखा चंद्र जानिये जेसी ॥ २७१ ॥

अथ लक्षणाके

कवित्त—चैतन अखंड जान निर्गुन निरूप धाम॥ प्राप्ति पूरन काम चिदानंद नंदहे ॥ नित्यहे स्वरूप जाको कूटस्थ प्रभाव ताको ॥ गावे गुण वेद वाको अमृत को कंदहे ॥ ज्ञानन अज्ञान दोइ विज्ञान स्वरूप सोइ॥श्रुति स्मृति जिये जोइ पूरन निवंदहे॥ भगवान यह जान मन माने सवे हान ॥ लक्ष लक्ष हेप्रमान निर्मल सु चंदहे ॥ २७२ ॥

दोहा—शुद्ध बुद्ध नित्य मुक्तिहे । निर्लेप अचल अज जान ॥ अनाम अरूप चिद्रूपहे । लक्ष अर्थ परमान ॥ २७३ ॥ जग कारज कारन नही । अंतर जामी नांहि ॥ वाच विशेष विशेष तजि । लक्षि लक्षि

मन मांहि ॥ २७४॥ वाच लक्षता करि कह्यो । शुद्ध स्वरूप निरूप ॥ भगवान ज्ञान भगवान पद । तत्पद ततपद अनूप ॥ २७५ ॥

इति श्रीअमृतधाराग्रंथे तत्पदवाचलक्षनिरूपबरननं
नाम षष्ठः प्रभावः समाप्तः ६

दोहा—तत्पद रूप निरूपके । वाच लक्ष करि दोइ त्वंपद वाच अरु लक्ष को । कछु पुछत हे सोइ ॥ २७६

प्रश्न

चौपाई—गुरुजी मेरो तिमर नसावो ॥ त्वंपद वाच लक्ष समुजावो ॥ रविप्रकाश ज्यों रेंनि न भासे ॥ तुमारि कृपासे भर्म भय नासे ॥ २७७ ॥

उत्तर

चौपाई—त्वंपद वाच प्रथम समुजाऊं ॥ तापछि पुनि लक्ष लखाऊं ॥ त्वंपद वाच देह सो मली ॥ज्यो दरपनमे छाया भली ॥२७८॥ सदा रहे दरपन मुख न्यारा ॥ अहं ममत्व अज्ञाननिहारा ॥ योंहि त्वंपद देह रहावे ॥ देह मांहि पुनि वाच कहावे ॥ २७९ ॥

अथ त्वंपदवाचबरनन.

दोहा—पंच कोश त्रय अवस्था । जाती वर्णाश्रम धर्म जन्म मर्न सुख दुख लहे । प्राप्ति कर्म अकर्म॥२८०॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यता । शूद्र अंतज जास ॥ ब्रह्मचारि ग्रहस्थ पुनि । वानप्रस्थ संन्यास ॥ २८१ ॥ षट विकार अन कोशके । सप्त धात मय मान । श्याम गौर अभिमान द्वय । दीर्घ ऱ्हस्व परमान ॥२८२॥ सुरनर त्रिय जग आदि दे । चारि खानि जे होइ । चोराशि लक्ष जाती पुनि । अंन कोश यह जोइ ॥ २८३ ॥

प्रश्न

सोरठा—षट विकार को भाव । सप्त धातको नाम कहो । श्रीगुरु कहो लखाव । लखि विकार विकार तजि ॥ २८४ ॥

उत्तर

दोहा—सप्त धात षट भाव कही । अंन कोश परसंग । विप्र छप्यो ग्रह स्वपच ज्यों । सो स्वरूपतें भंग ॥ २८५ ॥

कवित्त—अंनके विकार हुतें प्रगट विकार षट ॥ बाजी नटवत् सबे रची काहु नटहे ॥ जायतें अस्ति बखान वृद्धतें नख शीख प्रमान ॥ विपरितक्षिण आगें म्रियतें प्रगट हे ॥ नाडी अस्ति शुक्र सोतो पितातें प्रगट अंश ॥ लोहि मांस त्वचा रोम माता हुते रटहे ॥

कारण अलप भासे कारज विविध प्रकासे ॥ भगवान सुनी भासे अंन कोश बरहे ॥ २८६ ॥

दोहा—प्राण वायुको धर्म यह । क्षुधा पिपासा आदि ॥ अमगी बजरी त्यागकरी । उदर गुंज रस स्वादि ॥ २८७ ॥

इंदवछंद—वायु विलास विलास सबे यह जीव पग्यो रसभोग निमंता ॥ हाथ हले मुख वाच चले करि देह बले व्यवहार अनंता ॥ उत्तम मध्यम कर्मकरे धरि धर्म परे जग जोनिय जंता ॥ जो पतिव्रत करे यह जान मिले भगवान निरंजन कंता ॥ २८८ ॥

दोहा—मनोमयकोश अब बरनिहो । संकल्प वृत्ति अनुसार ॥ जल तरंग समहि सबे । शुभ पुनि अशुभ विचार ॥ २८९ ॥

सवैया—मन वृत्ति यह जल रूप रहे जित कित बेह बहुजोग अजोगा ॥ रहे जब सोई तबे नृप होई सबे सुख जोइ तजे दुख सोगा सुतवति प्रमान यह सुख जान सुनारि निदान पगे रस भोगा ॥ भगवान स्वरूप लहेसु अनूप तजे भ्रम कूप मनोमय रोगा ॥ २९० ॥

दोहा—मन संकल्प स्वरूप है । क्षिन भंगुर व्यो-

हार ॥ मनके आगे बुद्धिहे । ताको करूं विचार ॥२९१॥ बुद्धि धर्म यह जानिये । निश्चे भोग प्रमान ॥ सुरपुर नरपुर नागपुर । भोग स्वरूप जग जान ॥ २९२॥ जप तप संजम साधिके । जंत्र मंत्र मनु लाई ॥ भोग लालसा लागि रहे । सो विज्ञान सुभाई ॥ २९३ ॥

सोरठा—काशी करवत लीज । ज्यों कोइ नृप हुजिये ॥ प्रवेश त्रिवेणि कीज । तुला तोलि तन भोगवसि ॥ २९४ ॥ गणपति गौरि उपास । शीव शक्तिको व्रत धरे ॥ करे भोगकी आस । विज्ञान धर्म बंधन बहुत ॥ २९५ ॥ आनंद कोश बखान । अज्ञान मील्यांहे जीवसो ॥ हे आवर्ण निदान । नाहि नाहि सो करतहे ॥ २९६ ॥

अरिल—बंध मोक्षको ज्ञान लहे नही नेकही ॥ जीव शीव अरु ब्रह्म कहतहे एकही ॥ निद्रा मुखकी राशि वासि मन वसतहे ॥ परिहां यह अज्ञान प्रमान अज्ञता रसतहे ॥२९७॥

दोहा—पंच कोश यह कोश मलि । जीव वाच्य परमान ॥ पंच कोश पंथी बधे । कीट कोश पुनि जान ॥ ॥२९८॥ तीन अवस्था वाच्य पुनि । ताको करुं बखान ॥ जाग्रत हे पुनि स्वप्न कहे । सुषुपति सुखवत् मान॥२९९

चौदह इंद्रिय देव सब । विषय भोग परकाश ॥ स्थूल देह बहु भोग युत । जाग्रतको अवभास ॥ ३०० ॥

प्रश्न

सोरठा—शिष्य संशय करि लेह । चौद इंद्रिय देवको ॥ कह्यो गुरु तुम एह । देवभोग इंद्रिय सबै ॥ ३०१ ॥

उत्तर

चौपाई—गुरु कृपाकरि ज्ञान प्रकासे । जाते शिष्यको संशय नासे ॥ अध्यातम अधिभूत लखाऊं ॥ आधिदैव्यको भेदबताऊं ॥ ३०२ ॥ श्रवन इंद्रिय अध्यातमकहियें ॥ दिशा देव अधि दैवक लहियें ॥ शब्दविशे अधि भूतक जाना ॥ तीनो मिलिके भोग प्रमाना ॥ ३०३ ॥ त्वचा कहुं अध्यातम रूपा ॥ पवन देव अधिदैव अनूपा ॥ स्पर्शहे अधिभूत निवासा ॥ तीनो मिलिकें भोगप्रकासा ॥ ३०४ ॥ चक्षु इंद्रिय अध्यातम जानो ॥ रूप विशे अधिभूत बखानो ॥ रविप्रकाश अधिदैव कहावे ॥ तीनो मिलिके भोग ठहरावे ॥ ३०५ ॥ अध्यातम रसना करिलीन्ही ॥ रस अधिभूत भोग तीहि चीन्ही ॥ अधिदैवक हे वरुण विशेखा ॥ तीनो मिले भोग सुखलेखा ॥ ३०६ ॥

सोरठा—अध्यातम हे घ्राण । गंध भोग अधिभूत ॥

हे ॥ अधिदैवक क्षिति जाण । द्रुतिय नाम अश्वनिकुमारहे॥३०७॥अध्यातम हे वाक्य।वक्तव्य विशे अधिभूतहे ॥ अधिदैवक पावक।इनको धर्म सुकर्म हे॥३०८॥ पद अध्यातम रूप । चलन विशे अधिभूतहे ॥ विष्णु देव अनूप । अधिदैवक परमानहे ॥ ३०९ ॥ पाणि अध्यातम जान । ग्रहे विशे अधिभूतहे ॥ इंद्र देव परमान । अधिदैवक सो नामहे ॥ ३१० ॥ उपस्थ अध्यातम होइ । आनंद भोग अधिभूतहे ॥ देव प्रजापति जोइ । अधिदैवक सो जानियें ॥ ३११ ॥ अध्यातम गुदा जान । मलविसर्ग अधिभूतहे ॥ जम अधिदेवक मान । कर्म इंद्रियके देवता ॥ ३१२ ॥

दोहा—मन अध्यातम रूपहे । संकल्पविशे अधिभूत ॥ चंद्रदेव अधिदेवहे । तीनोमली अनुसूत ॥ ३१३ ॥ अध्यातम सो बुद्धिहै । अधिभूतक सो बोध॥ ब्रह्मा सो अधिदेवहे । कमल नालका शोध ॥ ३१४ ॥

सोरठा—अध्यातम चित्त जान । अधिभूत चिंताविशे ॥ अधिदेवक जिव मान । क्षेत्रज्ञ नाम पुनि तासकहि ॥ ३१५ ॥ अध्यातम अहंकार । अहंकृति अधिभूत हे ॥ अधिदैवक रुद्र विचार । अंतर इंद्रिय देव कहे ॥ ३१६ ॥

चौपाई—अध्यात्म इंद्रिय सब जानो ॥ अधिभूतक-सो विषय प्रमानो ॥ सर्वदेव अधिदैवक कहियें ॥ इंद्रियदेव भोग सब लहियें ॥ ३१७ ॥

दोहा—सतगुनतें सब देवता । रजगुन इंद्रिय जान ॥ विषय तमोगुनतें कहे । ज्ञानदृष्टि परमान ॥ ३१८ ॥ जाग्रतको बरनन कियो । शास्त्र गेतविचार ॥ यह प्रतिभासिक स्वप्रहे । दरपन मुखहि निहार ॥ ॥ ३१९ ॥ ज्यों दरपनमें देखियें । अपने मुखको भास ॥ जाग्रत छाया स्वप्न कहि । सो सुषुपतिमें नाश ॥ ३२० ॥ जेमें दोना फुल भरी । लागी बास सुवास ॥ योंही जाग्रत वासना । स्वप्न सूक्ष्म वास ॥ ३२१ ॥ जाग्रत स्वप्न जहां नहि । सोय सुषुपति नाम ॥ जीव शीव द्वै एक हे । निजानंदको धाम ॥ ३२२ ॥ पंचकोश त्रय अवस्था । जीव वाच परमान ॥ तीनो गुन पुनि वाचहे । सो पुनि करुं बखान ॥ ३२३ ॥

चौपाई—हम साधु हम शीतल रूप ॥ हम पंडित हम ज्ञानि अनूप ॥ हम दाता हम भक्त कहावे ॥ जीव वाच सत गुन यों गावे ॥ ३२४ ॥ हमकरता हम भोगी रागी ॥ संपत्ति दारा सुत वियोगी ॥ तप तीरथ हम यज्ञ करतहे ॥ जीव रजोगुण वाच धरतहे ॥ ३२५ ॥ मोह क्रोध लोभ मन माने ॥

निद्रा आलस कलह रहाने॥गुरुशास्त्र नास्तिक करी लेखे ॥ तमगुन वाच जीव यो पेखे ॥ ३२६ ॥

दोहा—सवे विरानो धर्मंह । जीव लेत हे मानि॥जीव वाच अभिमान मिलि। भही स्वरूपें हानि ॥ ३२७॥

अज्ञान आवग्न रूप यह । जीव शीवता मान ॥ सात भेद आवर्न में। सो पुनि कहूं वखान ॥ ३२८ ॥

अथ सातप्रकारके आवरनबरनन

दोहा—प्रथम एक अज्ञान कहि । द्रितिय आवरन नाम ॥ लहे विक्षेपता तीसरे । पुनि परोक्ष सुख धाम ॥ ३२९ ॥ पंचम हे परतक्षता । छठे शोकको नाश॥ज्ञान विचार विचार यह।साते सुखको भास॥३३०

अरिल—कुबुधि कांसको खेत अज्ञ कोरी गहे । हुते शुद्ध दृश्य शुद्ध भ्रमते भ्रमिरहे । गनती दसो प्रमान ज्ञान नव कोकरे । परिहा आप यों भूलि नास बुधि मन धरे ॥ ३३१ ॥ एक अश्व अस्वार आय तिहि छिन गयो।सवे वहां ले धाइ तांहि पुछन लयो। एक ज्ञान नव मान भिन्न करि जोइरे । परिहा नवकी संख्या कहे लहे तु सोइरे ॥ ३३२ ॥

दोहा—वडे पुरुष सो कहतहे । हुए कहुं हि निदान ॥ सुनि परोक्ष सेवन कियोदसमां प्रतक्ष प्रमान ॥३३३॥

पंच कोश मिथ्या नहि । जीव बह्यो भ्रम मान ॥ पंच कोश साचो कहे । आपुआप नहि जान ॥ ३३४ ॥ दुख सुख भुलेही फरे । पंचकोशकी पीर ॥ विक्षेप शोक संताप तें । लहेन सुखकी सीर ॥ ३३५ ॥

सवैया—यों गुरु ज्ञान मिले बलवांन सबे गुन· हान सो तत्व लखायो ॥ भर्म विलान नहि कोउ आन यह सुख जान परोक्ष बतायो ॥ गुरु ज्ञान कहे सुनि शिष्य लहे परतक्ष यहे सुतत्व समुजायो ॥ द्वै भगवान स्व-रूप समान सो जान अजान नही कछु पायो ॥३३६॥

दोहा—प्रथम परोक्ष दिखाइकें। फिरही कहे प्रतक्ष परोक्ष प्रत्यक्ष द्वै वाच तजि।तबे प्राप्ति शुधलक्ष ॥३३७॥

चौपाई—पंचकोश सो नदी प्रमानो । जीव बह्यो कोरगि करि जानो ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र सब लेखे ॥ आपुआप नास्तिक करि पेखे ॥ ३३८ ॥ अश्वारसमान गुरु ठहगया ॥ मारिता जने दसो लखाया॥गुरु गमि ज्ञान ज्ञान इम जानो ॥ जन्म मरनको शोक नसानो ॥ ३३९ ॥

दोहा—पूरनपद प्राप्ति भयो । यह निरंकुश जान ॥ प्राप्ति लही प्राप्ति नही । सोइ प्राप्ति परमान ॥३४०॥ जीववाचबरनन कियो । श्रुति स्मृति अब भास ॥ भगवान वाचबरनन कियो । लक्ष पुनह परकाश॥३४१॥

जीव वाचमें यों बध्यो । बध्यो कीर कपि भूलि ॥
छीलका तांदुल अम्र शशि । जीवदुख यों झुलि ॥३४२॥

इति श्रीअमृतधाराग्रंथे त्वंपदवाचवरननं नाम
सप्तमः प्रभावः समाप्तः ७

दोहा—वाचस्वरूप निरूपके । लह्यो गुरु समुझाय ॥
वाच अर्थ सो शिष्य लह्यो । कछु पुछन मन लाय ॥३४३॥

प्रश्न

चौपाई—शिष्य पुछे तुम कहो गुसाई ॥ तुह्मारि कृपासे नाश भ्रम जाई ॥ लक्ष अर्थनिके समुजावो ॥ मेरे मनको तिमिर नसावो ॥ ३४४ ॥

दोहा—श्रीगुरु उत्तर देतहे । वेदमंत्र निरधार ॥ निरधार निरलेप पद । निर्मल लक्ष विचार ॥ ३४५ ॥

अथ श्रुतिः

सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म

दोहा—सत्य ज्ञान अनंतहे । ब्रह्म ब्रह्म पुनि सोइ ॥ अनंत आकाश विलासमय । लक्ष अर्थ यह जोइ ॥ ३४६ ॥ निरविकार कूटस्थहे । नही कर्मसंसार ॥ यथानिहाइ कुटहे । छुरि कत्तर निरधार ॥ ३४७ ॥ क्रियाहिन चुंकक सदा । सत्या लोह संचेत ॥ यो संघात संचेत करी । कुटस्थ आपु रहेत ॥ ३४८ ॥ सदचिद

आनंद कंद पुनि । बोध निरंजन नाम ॥ लक्ष अर्थ प्रभाव यह । ज्ञान ज्ञति निजधाम ॥ ३४९ ॥ लक्ष अर्थमे भेद नही । भेद सु वाच निरूप ॥ वाच विभाग विभाग करि।लक्ष सु एक स्वरूप॥३५०॥जीव जीवता मेटिके । ईश ईशता त्यागि ॥ तत्त्वं त्वंतत् एकहे । ब्रह्मअसीपद पागि ॥ ३५१ ॥

प्रश्न

दोहा—ईश नाम सर्वज्ञता । जीव अल्प अज्ञान ॥ कहो गुरु क्योंइक कह्यो।पुछे पुनि प्रश्न निदान ॥३५२॥

उत्तर

दोहा—उपाधि भेद सर्वज्ञता । पुनि उपाधि अतज्ञ ॥ उपाधि भेद निवारिकें । तवे अज्ञ नहि तज्ञ ॥ ३५३ ॥ कारन वाच सर्वज्ञता। कारज वाच अतज्ञ ॥ कारज कारन भेद तजि । पूरणबोध महिं तज्ञ ॥ ३५४ ॥

अथ श्रुतिः श्लोकः

कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः ॥
कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवतिष्ठते ३५५

प्रश्न

चौपाई—कैसें कारज कारण लहियें । को प्रकार

लक्षणा लहियें ॥ परोक्ष प्रतक्ष एक क्यों कीजें । यह उत्तर गुरु निके दीजें ॥ ३५६ ॥

उत्तर

चौपाई—तीन प्रकार लक्षणा सुनिले॥जहतलक्षणा अजहत गुनिले॥जहताजहत तिसरी कहियें ॥करी विचार गुरुगम्यते लहियें ॥ ३५७ ॥ जहतलक्षणा पहिले जानो ॥ वाच लक्षको त्याग बखानो ॥ सत अरु असत सवे ब्रह्मंडा ॥ जहत करे सबहिको खंडा ॥ ३५८ ॥ सो यह शब्द परोक्ष कहावे । अयंशब्द प्रतक्ष कहावे ॥ जो परोक्ष प्रतक्ष लखावे ॥ तिनिप्रकार लक्षणा गावे ॥ ३५९ ॥

अथ लक्षणाभेद.

अरिल—जहतलक्षणा जान मानतुं शिष्यरे ॥ पिंड ब्रह्मांड अभाव भाव नहि दिष्यरे ॥ यह निश्चे अज्ञान सुन्य मत्त मानियें ॥ परिहा याके आगें ओर लक्षणा जानियें ॥ ३६० ॥ अजहत करुं बखान जान गुरुगम्यतें ॥ व्यापक ऋपि ब्रह्म जगतमें रम्यतें ॥ कारज कारण एक भेद नहि देखियें ॥ परिहा अजहत यह परिमान वेदतें लेखियें ॥ ३६१ ॥

दोहा—जीव ईस नहि त्यागहे।पिंड ब्रह्मांड न त्याग॥

वाच लक्षको त्याग नहि। अजहत मत यह त्याग ॥ ३६२॥

सोरठा—कही लक्षणा दोइ। जहत अजहत बखानिकें। आत्मज्ञान न होइ। भाग त्याग विभाग विन ॥ ३६३॥

दोहा—पिंड ब्रह्मांड विभागके। सत अरु असत विचार ॥ असत रूप जग त्यागियें। सत चैतन उर-धार ॥ ३६४ ॥

चौपाई—ईश वाच सब त्याग सो कीजें ॥ लक्षि लक्ष ईश्वरकी लीजें॥ जीव वाच पुनि त्याग कहियें॥ जीवलक्षणा लक्षि लहियें ॥ ३६५ ॥ कारजकारणवाच ज्यों कहियें॥ वाचत्यागकरि लक्ष सुलहिये ॥ लक्षि दुहुनकी लक्ष अनूपा ॥ सदचिद आनंद एक निरूपा ॥ ३६६

दोहा—सदचिद आनंद ईश जो। सदचिद आनंद जीव॥ वेदविद यों कहतहे। लहत निरंतर शीव॥३६७॥ अग्नि एकके तीन गुन। दाहक उष्ण प्रकाश ॥ जीतनी जहां उपाधिहे। तामें तीतनो भास ॥३६८॥ बहुत-काष्ठ जहां बारियें। तहां अग्नि बहुरूप ॥ दिवा मसाल तनकसी। गुन तीनो अनुसूत ॥ ३६९ ॥ यों माया ब्रह्मांडमें। वडो ईसको भास ॥ पिंड अविद्या तनकसी। जीव अलपपरकास ॥ ३७० ॥ महा अद्रि छांया जिमि। दिसे हाथ पचास ॥ वहइ छांया चक्षुमें।

अति सूक्ष्म परकाश ॥३७१॥ मायाकल्पित ईशहे । मायाकल्पित जीव ॥ जीव ईश माया नहि । सदा निरंजन शीव ॥ ३७२ ॥ महाकाश ज्यों एकहे । घट मठ दोउ उपाधि ॥ घटाकाश मठाकाश तजि । महाकाश सो साधि ॥ ३७३ ॥

साखी—कोटिक कुंभ अंब भरि धरिया ॥ सबमें दिसे भान ॥ माया अविद्या उपाधि मिलि ॥ जीव ईश परमान ॥ ३७४ ॥

प्रश्न

दोहा—विविधभांतिकी युक्ति करि ॥ गुरु लखायो ज्ञान ॥ देशकाल क्यों त्यागियें । शिष्य पुछे परमान ॥ ३७५ ॥

चौपाई—गुरु कृपा करि ज्ञान लखावे ॥ जाते शिष्य परमपद पावे ॥ देश काल तजि वस्तु विशेका ॥ तिनो त्यागसो प्राप्ती एका ॥ ३७६ ॥

द्रष्टांत

सोऽयं देवदत्त इति वाक्येन निरूपितं

चौपाई—एक पुरुष कोउ काशी गयो ॥ ते ग्रहस्तके बालक भयो ॥ सो पुरुष फिरिहि ग्रह आयो ॥ विप्रसंगको फिरिफिरि जायो ॥ ३७७ ॥

दोहा—काशीकों बालक चल्यो । उनको नातो मानि॥पश्चिम दिशि प्राप्ति भयो । संबंध नाम पहिछानि ॥ ३७८ ॥ इहां पुरुप बेठो हुतो । विप्रहुतो तापास ॥ काशीवासी आइयो । विप्र भेद परकाश ॥३७९॥ संग तुमारे हे बडे । मिल्यो प्रेम अनुसार ॥ यह को कहाते आइयो । कहो विप्र निरधार ॥ ३८० ॥

ब्राह्मण उवाच

जो वह काशी देखियो ॥ सो यह परगट भान ॥ देश काल अरु वस्तु तजि ॥ पिंडग्रहण परमान ॥३८१॥ देश देश सो ना मिले ॥ काल काल नाहि एक ॥ वस्तु वस्तु सो ना मिले ॥ सब तजि ग्रहिये छेक ॥ ३८२॥

सोरठा—देवदत्त ज्यों एक ।सो अयं करि लेखियें॥ त्याग भयो द्वै देश । परोक्ष प्रत्यक्ष कहिजे कहे॥३८३॥ योंही चैतन एक॥सतचित आनंद रूपहे ॥ परोक्ष अक्ष विशेक ॥ पिंड ब्रह्मांड विभाग द्वै ॥ ३८४ ॥ पिंड त्याग ब्रह्मांड ॥ परोक्ष त्याग प्रत्यक्ष पुनि ॥ चैतन लह्यो अखंड ॥ सोहं सोहं एकता ॥ ३८५॥

चौपाई—श्रवन मनन निदध्यासन कींना॥ साक्षात्कार पुनि आगे चींना ॥ गुरु गम ज्ञान गुरु सो कह्यो॥ सुनत शिष्यको संशय दह्यो ॥ ३८६ ॥

दोहा—श्रवन कह्यो अरु मनन पुनि। निजध्यासविचार ॥ भगवान ज्ञान अज्ञानको। शिष्य पुछे निरधार ॥ ३८७ ॥

इति श्रीअमृतधाराग्रंथे श्रवणनिरूपणवर्णनं
नाम अष्टमः प्रभावः समाप्तः ८

सोरठा—नवमं नेम प्रभाव। अज्ञान ज्ञानकि वृत्तिको ॥ कछु पुछनको चाव। शिष्य पुछे हिय हरखसो ॥ ३८८ ॥

प्रश्न

सोरठा—कहो ज्ञानको रूप। शिष्यको संशय नाशि करि॥पुछे प्रश्न अनूप। ज्ञान अज्ञान स्वरूपद्वं॥३८९॥

उत्तर

चौपाई—गुरु कहे सुन शिष्य सुजान ॥ वरनि सुनाउ ज्ञान अज्ञान ॥ सात भूमिका ज्ञान लखाऊं ॥ अरु अज्ञान सात ठहराऊं॥ ३९० ॥

दोहा—प्रथम ज्ञानभूमिका। कहे गुरु समुजाइ ॥ अज्ञान भेद आगे कहुं ॥ सुनो शिष्य चित लाइ ॥ ३९१ ॥

अथ सप्तज्ञानभूमिका वरनन.

अरिल—ज्ञानभूमिका कहो लहो गुरुगम्यतें ॥

शुभइच्छा इक जानि विचारसुरम्यतं ॥ तनुमान सा त्रय जान सत्वापत्ति चतुर्था ॥ परिहा सर्व पदारथ त्याग अनाशक्ति तुरिया ॥ ३९२ ॥

शुभइच्छा १ सुविचारना २ तनुमानसा ३ सत्वापत्ति ४ असंसक्ति ५ पदार्थाभवनी ६ तुरिया ७

यह सप्तभूमिका ज्ञानकी गुरुने समान रूपमें कहि परंतु शिष्य निरसंदेह हुवा नहीं पुनः गुरुते प्रश्न करे है ॥

प्रश्न

अथ गद्य चौपाई—नाम भूमिका गुरु सब गाइ॥ताते संसय नसी नकाइ ॥ संसय काल सवनंत भागी ॥ श्रुति स्मृति संत कहत विचारी ॥ निसदिन चिंता यह चित्त मांइ ॥ कौन उपाय करूं कित जांइ ॥ तीर्थ व्रत दान जप कीना ॥ तदपि संसय भयान छीना ॥ श्रवन मनन युक्ति जन पाइ ॥ प्रमाण प्रमेय गत भ्रम न साइ ॥ तदपि निसंदेह भयो नहि देवा ॥ ताते प्रश्न कहु सुनवे कुभेवा॥भगवान में सब दिन दुःखियो॥ एसो करो होउ में सुखियो ॥ अवर न है इच्छा मन माई ॥ स-

म भूमिका कहो बुझाई ॥ ३९३ ॥

उत्तर

चौपाई—शुभ इच्छा सो प्रथम सुनाऊं ॥ सुविचारना नाम पिछे गाऊं ॥ तनुमान सो तोसु कहो ॥ तेरो संशय नाशन चहो ॥३९४॥ चौथि सत्वापत्ति कहावे ॥ संशय शोक रहन नहि पावे ॥ असंसक्तिका हे पंचमी ॥ पदार्थ भावनी हे षष्ठमी ॥ सात भूमिका कहियत तुरिया ॥ पूरणाचंद रहे ज्यु पुरिया ॥ ३९५ ॥

प्रश्न

चौपाई—भो भगवान लघुमति कहावे ॥ तातें रहस्य रहि नहि जावे ॥ भिन्न भिन्न मोहिसु कहो ॥ जो अज्ञान मिटायो चहो ॥ ३९६ ॥

उत्तर

चौपाई—विषय विषे द्वेपता जिनही ॥ गुरु तिरथपर इच्छा तिनही ॥ तातें शुभइच्छासो कहियें ॥ श्रवणकथाप्रवेशहि चहिये ॥९७॥ गुणगावत पुलकितहोजावे॥दिन दिन सबसो हित बढावे॥भगवत पर ममता हे जिनके॥प्रेमयुक्तचित्त कहतहु तिनके ॥३९८॥सुविचारको रूप लखाऊं॥जाते आत्महि तत्वहि पाऊं॥एकांत ह्वैके रज तम टारे ॥ सतगुनकी शक्ति उग्धारे ॥३९९॥

में हऊं को कोहें संसारा॥तनमय ह्वैके करे विचारा॥ तनुमानसा कहतहो तानें॥मनको वासिकरनोहे जामें॥४००॥ स्थिर ह्वै शुद्धस्वरूपमे रहे॥ ताकों वेद अनासित कहे॥ चतुरथ सत्वापत्ति कहावे॥ अनुभवउदे अभंगरहावे॥४०१॥आत्मस्वरूप सकलजग देखे॥बुंद फेन तरंगन पेखे॥ आतमसिंधु देहतरंगा॥ उपजे विनसे पावे भंगा॥४०२॥ तनअभिमान छुट जब जावे॥ता विनु स्वस्वरूप नाहि पावे॥ असंसक्तिकाभूमि कहावे॥ पंचम महा अनूप लखावे॥४०३॥पदार्थबुद्धि नाश होइ जावे॥ ताविनुआतमरूप नपावे॥ तातें पदार्थ अभाव कहावे॥ यातें जीव परमपद पावे॥४०४॥सप्तभूमिकाकेमाहिं॥भावाऽभाव तहां कछु नाहि॥ ये हे मेरे या हे तेरो॥ एसो भाव न आवे नेरो॥४०५॥ सातभूमिकाज्ञान लखायो॥ वेदांतमहावाक्यतें पायो॥ अब ज्ञानभूमि सुनि लीजें॥ समझी विचारि त्याग पुनि कीजें॥४०६॥

अज्ञानविषये.

चौपाई—देहभाव सब आपहि मानो॥ यातें और अज्ञान न आनो॥ जन्म मरण देह बहुरूपा॥ यहइ बडो अज्ञान अनूपा॥४०७॥ दुख सुख भोग भोगता लहे॥ जुठो जगत साच करि ग्रहे॥ गुरुको ज्ञा-

न हृदय नहि धरे ॥ जीव अज्ञानकूप यों परे ॥४०८॥

अथ सप्तअज्ञानभूमिकाबरनन.

कवित्त—सात अज्ञान अवस्था कहो लहो योग यथा स्वयं गुरु नाइ माया भेदसो वखानियें ॥ एक बीजजाग्रत सो जाग्रतहे दुसरीसो कहि महाजाग्रत सो तीसरी प्रमानियें ॥ जाग्रतस्वप्न चारि पंचस्वप्नकों निहारि स्वप्नमाहि जाग्रतसो छठे छठि ठाठियें ॥ सुषोपति सुखमांहि भगवान मिले नांहि निर्गुण स्वरूप जांहि स्वस्वरूप जानियें ॥ ४०९ ॥

बीजजाग्रत १ जाग्रत २ महाजाग्रत ३ जाग्रतस्वप्न ४ स्वप्न ५ स्वप्नजाग्रत ६ सुषोपति ७

दोहा—कही अवस्था ए सबे। अज्ञानभूमि परकाश॥ सो विचारि सातो तजे। शान्ति हृदयनिवास॥४१०॥

प्रश्न

दोहा—एकता करि सबहि कही। श्रीगुरु ज्ञानविचार ॥भिन्न भिन्न को रूप ज्यों॥शिष्य पुछे निरधार॥४११॥

उत्तर

चौपाई—वीर्य परे जब गर्भमें जाई ॥ रजवीर्य मिलि तब एक कहाई ॥ सो जाग्रतको विरज रहावे ॥ अज्ञानभूमिका प्रथम कहावे॥४१२॥प्रसूति होइ तब बा

हिरआयो ॥ नामजाति गुन कर्म कहायो॥ मम माता मम भगिनी जाने।पाप पुन्य मनमें नाहि आने ॥४१३॥ यह अवस्था जाग्रत कहियें॥सुख दुख भेद भोगबहु लहियें॥ एक अज्ञान बहुतविधि भयो ॥ जेसे बीजवृक्षता लयो ॥ ४१४ ॥ महाजाग्रत सो नाम कहावे ॥ व्योहार-रूप बहु वृत्ति रहावे ॥ जातिवरन आश्रमहि माने॥ पंडित मुरख सबे रहाने ॥ ४१५ ॥ क्रिया कर्म कुल गोत्र निरूपा ॥ कर्म भक्ति पुनि जोग अनूपा ॥ योग यज्ञ शुभ कर्म करे हम ॥ सुत दारा धनं धाम अहं हम ॥४१६॥जाग्रतमांहि स्वप्न पुनि कहिये ॥ ज्ञानदृष्टितें प्रगटहि लहियें॥मिथ्या मनसंकल्प उपावे ॥यह जाग्रतमें स्वप्न कहावे ॥ ४१७ ॥

दोहा—सुत वित पशु परिवार सब । नाशवंत सो जान ॥ जूठ वस्तु ग्रहे साचिकर । लहे स्वप्न अज्ञान ॥४१८॥ ब्रह्मलोक हि आदि दे । शेषनागले अंत ॥ अज्ञानअवस्था सत कहे । स्वप्न अवस्थामंत ॥ ४१९ ॥

चौपाई—स्वप्नमाज जाग्रत पुनि कहियें । ताको भेद वेदंतं लहियें ॥ कैक बेर नृपति भये कहे । भोगवारता बहुविधि ग्रहे ॥ ४२० ॥ इंद्र कुबेर वरुण भय माने । ब्रह्मा शंकर भया बखाने ॥ द्वे आये पुनि आ

गे द्वयहे । स्वप्नमांज जाग्रत यों लहे ॥ ४२१ ॥

दोहा—आपापरभासे नही । बंध मोक्ष नहि जान ॥
चंद्रहि न भादो निशाये । सुपोपतिअज्ञान ॥ ४२२ ॥

चौपाई—अज्ञानज्ञानकी भूमि लखाई । गुरुकृपा सुशिष्य सिख पाई ॥ अज्ञानज्ञानको रूप सुनि निको ॥
शिष्य पुछे सो ज्ञान गुरुजिको ॥ ४२३ ॥

दोहा—अज्ञान ज्ञानकी भूमिका । कही गुरु समुजाई ॥भगवान ज्ञान अज्ञान पुनि । शिष्य पुछे सतभाई ॥

इति श्रीअमृतधाराग्रंथे ज्ञानअज्ञानभूमिकावरननं नाम नवमः प्रभावः समाप्तः ॥ ९ ॥

सोरठा—कह्यो अज्ञानस्वरूप । युक्ति यत्न करि त्यागिये ॥ लहिये ज्ञान अनूप । श्रीगुरु सो समुजाइये ॥

उत्तर

अरिल—अज्ञान ज्ञान यह जान ज्ञान गुरु कहतहे ॥ सातधातकी देह एक जो लहतहे ॥ चैतन सदा अलेप देहवत् मानिये ॥ परिहा यह बडो अज्ञान और नहि आनिये ॥ ४२६ ॥ आतम स्वच्छप्रकाश निरंतरभासहि ॥ अज जअन्मा एक नित्यप्रकाशहि ॥ देह अस्थि अरु मांस रुधिर अरु मूत्रहे ॥ परिहा तम

प्रकाश इक कहे ग्रहेसु कुपुत्रहे ॥ ४२७ ॥ आतमके प-
रकाशभास ब्रह्मांडहे ॥ भुवन चतुर्दशमाहि नाहि कछु
खंडहे ॥ तीन हाथकी देह यह मम लहतहे ॥ परिहा
यह अज्ञानस्वरूप वेदविद कहतहे ॥ ४२८ ॥

दोहा—देहभाव ज्यो भाव यह।सो अज्ञान प्रमान॥
संक्षेपरूप अज्ञान कहि।लहे स्वरूप पुनि ज्ञान॥४२९॥

अथ ज्ञानबरनन

दोहा—अशुद्धदेह मलवत सदा। नही मोक्ष संबंध॥
अहंदेह त्रयकाल नहि। लहे ज्ञान अनुबंध॥ ४३० ॥

चौपाई—ज्ञानि ज्ञानरूपमें रहे ॥ देह ग्रहेमें मम
न लहें ॥ स्वपचस्पर्श साधु नहि करें ॥ यो ज्ञानि
देह परिहरें ॥ ४३१ ॥ मान दंभ हिंसा तजि क्रोध॥
द्वै मानप सबसो अविरोध ॥ गुरुसेवा शुचि ज्ञान
निवास ॥ मन आतम निग्रह परकास॥ ४३२ ॥ सर्बभूत
जीवनहितकारी ॥ अनन्यभक्ति मनमे अतिप्यारी ॥
लोलुपत छलछिद्रनि तजे॥स्वस्वरूप तजि आन न भजे
॥ ४३३ ॥ सर्व अखिल वेद यों गावे ॥ ज्ञानि गुरु पुनि यों
समुजावे ॥ एसे ज्ञान खडग कर ग्रहिये ॥ अज्ञान मोह
ममतासों लहिये ॥ ४३४॥ ज्यों कोइ खोटि द्रव्य जो होई॥
बिना पाराखि परखन कोई ॥ यों जब ज्ञानवंत गुरु

लहिये ॥ ज्ञान अज्ञान भेद तब कहिये ॥ ४३५ ॥

दोहा—जेसें दरपनके निकट । तबा आरसीभास ॥ भ्रांतितें भासे सबे । यह अज्ञानप्रकास ॥ ४३६ ॥ निरवासिकों मुक्तिपद । वासी बसे सु देह ॥ द्वै प्रकारकी वासना । शुद्ध मलीना एह ॥ ४३७ ॥

प्रश्न

चौपाई—शिष्य पुछे गुरु मोहि सुनावो ॥ शुद्ध मलीना भेद बतावो ॥ केसें जन्म मरन भ्रम छुटे ॥ कर्मभंडार कौन विधि फुटे ॥ ४३८ ॥

उत्तर

दोहा—मलिन मलिन अति हे सबे । चार विचार निहार ॥ प्रथम भाखे प्रकाश करि । पिछे तीहि सं चार ॥ ४३९ ॥ लोक वासना एकहे । देह दूसरी जा न॥अभिअंतर सो तीसरी । चौथी शास्त्रप्रमान॥४४०॥

अथ वासनाबरनन.

कवित्त—वासनाविचार कहुं गुरु ज्ञान ज्ञान लहुं कामना स्वरूप दहुं लहो रुपि मंतमे ॥ लोकको मिलन चाहे लोक लाज तपताहे अहं देह जपताहे भ्रमे जीव जंतमे ॥ अंतर इंद्रि विलासे रूप रंग भोग वासे श्रुतिहि स्मृति प्रकाशे पाठ बहु तंतमें ॥ ज

न्म हुकी दाता यह विधातायें रची स्वारी भगवान क्यों विसारि पऱ्यो जंम हातमे ॥ ४४१ ॥

दोहा—सकल समुच्चय गुरु कहे। लहे सु ज्ञानी होइ ॥ शिष्यको संशय दहनकों। भिन्न भिन्न कहुं सोइ ॥ ४४२ ॥

अथ लोकवासनाबरनन.

चौपाई—राजा परजा दरशन आवे ॥ सो कीजे ज्यों जग मन भावे ॥ गिरा मौंन पुनि वस्त्र नहि लीजें ॥ ताजि वस्ति वनवास जो कीजे ॥ ४४३ ॥ द्रव्य त्याग नेना नहि खोले ॥ आसन अडग कदे नहि डोले ॥ धन्य धन्य जग-माहि कहावे ॥ लोकवासना देह धरावे ॥ ४४४ ॥

अथ देहवासनाबरनन.

चौपाई—अहंबुद्धिहि देहमें माने । जुठो भोग सचो करिजाने ॥ कुबज लुबज बहुरूप कुरूपा। देहवा-सना पूरन कूपा ॥ ४४५॥

अथाऽभ्यंतरवासनाबरनन.

चौपाई—मनमे भोगवासना चाहे । मिले नाहि त्यों त्योंमनदाहे ॥ बहार त्याग मनमांहि ग्रहिये । भितरवासनोदह सो लहिये ॥ ४४६ ॥

शास्त्रवासनाबरनन.

दोहा—शास्त्र वासना जानि यह । तीन भेद अव भास ॥ एकपाठ बहुपाठ पुनि । अनुष्ठान परकास ॥ ॥ ४४७ ॥ नानाशास्त्र सु पाठ करि । मनमें मानें मोद ॥ नित्यनिमित्तको पाठ करि । कीजे सकल विनोद ॥ ४४८ ॥

चौपाई—सकल पुरान पाठ पुनि भारत । हरिवं-शप्रसंग लहुं कछु स्वारथ ॥ श्रुति स्मृतिके अर्थ करीजे । यह वासनाजन्म लहीजे ॥ ४४९ ॥

अथाऽनुष्ठानवासनावर्णन.

चौपाई—अनुष्ठानको रूप लखाऊं । कर्म नि लिये नि रूप नगाऊं ॥ कर्म करें घरि धर्म धरतहे । जीव अविद्या कूप परतहे ॥४५०॥ मृतिका ले करि चरनहि धोवे। न्हाई धोई उज्जवल तन जोवे॥आप करें सो उत्तम माने। और सकलकों लघु करि जाने ॥ ४५१ ॥ होम नेम सो यह करतहे । सुर पुर भोग संजोग धरत हे ॥ कर्मनको अनुष्ठान कहावे । यह वासनादेह धरावे ॥ ४५२ ॥

दोहा—ए सब मलिनहि जानिये।मलिनदेह उत्पत्ति॥ ए चारों परित्यागकें । चार और मन रति ॥ ४५३ ॥ शुद्धवासना अब कहुं । लह्यो मोक्ष निजधाम ॥

देहभाव अभाव करी। चार भेद आराम ॥ ४५४ ॥

प्रश्न

दोहा—शिष्य कहे निज शिष्य द्वै। सुनी विनंति गुरु देव ॥ शुद्धवासना कौंन हे। कहियें ताको भेद ॥ ४५५ ॥

उत्तर

दोहा—प्रथम मैत्री ये कहू। करुणा दुसरी जान ॥ मुदिता नामसु तीसरी। पुनि उपेक्ष प्रमान ॥ ४५६ ॥

सवैया–मैत्रीकि मान सुवेद प्रमानसवे भ्रम जान सु आनन आने ॥ के करुना करि नाजिव द्रोह यहे करुना जिव देखि सुमाने ॥ सुने पर सुख सु आनंद मुखसु अंतर हरखसु आप हि जाने ॥ शत्रु न मित्र उपेक्षक चित्त सदा हिय हीत लहे भगवाने ॥ ४५७ ॥

दोहा—सर्व जीवसो मित्रता। दुख कोउ नही देत ॥ सब मो मेमे सर्वही। यह ज्ञान करि लेत ॥४५८॥ दुखि देखी सुख दीजिये। भक्ति ज्ञान समुजाय ॥ छाजन भोजन द्रव्य दे। करुणा यह सु भाय ॥४५९॥ परस्तुति श्रवणे सुने। अंतर हरखप्रकास ॥ सुनि सुनि फिरि स्तुति करें। मुदिता मुदित्त निवास ॥४६०॥ दुष्टसंयोग त्यागिये। ज्यों जल छोडत पारि ॥ मित्र-भाव नहि शत्रु पुनि। यह उपेक्षिता धारि ॥ ४६१ ॥

चार मलीन पहिले कही । तीनते जन्म निदान ॥ ए चारो मनशुद्धतें । महामोक्ष परमान ॥ ४६२ ॥ पुछत हे रघुनाथजी । उत्तर देत वसिष्ठ ॥ यह निर्णय सोई कहे । जाकौं ज्ञान सो इष्ट ॥ ४६३ ॥ मलिन शुद्धहि भेदद्वै । गुरु कह्यो यह भाव ॥ युक्ति युक्ति ज्यों ज्यों ग्रहे । शिष्य संशय उपजाव ॥ ४६४ ॥ यह विधि ज्ञान प्रमानकें ॥ श्रीगुरु कह्यो सुज्ञान ॥ जोगजुक्ति आगे कहुं ॥ यों भाखे भगवान ॥ ४६५ ॥

इति श्रीअमृतधाराग्रंथे शुद्धमलिनवासना-
वरननं नाम दशमः प्रभावः समाप्तः ॥ १० ॥

सोरठा—गुरु कह्यो निरवेद। निरमल ज्ञान प्रमानतें ॥ शिष्य पुछे यह भेद । निरवासना क्यों हुजिये ॥ ४६६ ॥

प्रश्न

सोरठा—जो तुम ज्ञान प्रमान । आकाश फल सम हे संब ॥जो जुक्ति नहि जान । वात कहत सो वातहे॥ ॥ ४६७ ॥ जेसें वीज अंकूर ॥ अग्निविना नाशे नहि॥ रही वासनपू ॥ योग अग्नि विन क्यों नसे ॥ ४६८ ॥

उत्तर

दोहा—शिष्य सुनो गुरु कहतहे । योग युक्ति व्योहार ॥ वेदांत मतसु औरहे । पातंजलि और विचार॥

॥४६९॥पातंजलि मत प्रथम कही।नाम भेद विस्तार ॥
अष्टांगयोग जे अंगहे। तिनको सुनो विचार॥ ४७० ॥
चौपाई—संजम अरु नेम भेदद्वै कहियें ॥ आसन
अरु प्राणायाम सु लहिये॥प्रत्याहार धारना जानो॥ध्यान
सहित समाधि बखानो ॥ ४७१ ॥ नाम समुच्चय कहे
बखानि ॥ भिन्न भिन्न अब कहो सुजानि ॥ प्रथमहि
संजम युक्ति बनाऊं॥पंच भेद संजम पुनि गाऊं॥४७२॥
दोहा—अहिंसा सत्य अस्तेय । ब्रह्मचर्य ग्रहही-
न ॥ यह विधि समज प्रमानियें। तजि जंजाल सुदीन ॥
॥ ४७३ ॥ शुचिस्वरूप संतोषयुत । तप ईश्वर प्र-
णिधान॥स्वाध्याय पुनि पाठ करि। नेम पंच विधि जा-
न ॥ ४७४ ॥ तिजे आसन साधिके । तिनकेबहुवि-
धि मान ॥ सिद्धसु आसन पद्मको। चौराशी परमान ॥
॥४७५॥ चोथे प्रणायाम कही । तीन भांति परकाश ॥
उत्तम मध्यम दोइ कहे। पुनि कनिष्ठ अवभास ॥४७६॥
पंचम प्रत्याहार कही । मनकी वृत्ति निवारि ॥ जीत
कीत ते मन रोकिये । ब्रह्मभाव उरधारि ॥ ४७७ ॥
सोहं शब्द पुकारि करी। अंतर प्रीति लगाइ ॥ कै अ-
डोल डोले नही । शुद्धधारना पाइ ॥ ४७८ ॥ सोहं
सोहं होत तां। शोक सबे मिट जाइ ॥ एक एकहि ए-

कहै । ध्यान मान शुभ भाइ ॥ ४७९ ॥ ध्यान मान अभिमान नहि । सो समाधि आराधि । चार विघन समाधिमें । सो गुरुगम्यतें साधि ॥ ४८० ॥ लय विक्षेप कषाय तजि । रसास्वाद नहि स्वाद । चारो विघन निवारिये । सो समाधि अनुवाद ॥ ४८१ ॥

चारविघ्नबरनन

कवित्त—चारहि विघन एसें कहो लहु भेद तैसें लय के स्वरूप एसे निद्रामे न आनिये॥ब्रह्मवृत्ति मन लागे आन वृत्ति रस पागे विषे भ्रम भ्रम जागे सो विक्षेप मानिये ॥ सगुनकी शुद्धि आवे रस स्वाद स्वाद भावे भोगवास वासि जावे सो कषाय जानिये॥ भगवान भाग्य जागे चारोहि विघन त्यागे ज्ञानको खडग पागे देहभाव हानिये ॥४८२ ॥

चौपाई—समाधि मर्मे निद्रा जब आवे । लयस्वरूप यह विघन कहावे ॥ समाधि छोडि निद्रावश होई॥यह विघन त्यागे नर कोई॥४८३॥समाधि त्यागि विषयामनमाना ।यह विघन विक्षेपपरहाना॥आन मनोरथ करी हरि हे सोई ॥यह विघन विक्षेपजु होई॥४८४॥विविध भांतिके भोग करंते । ते सब मनके माहि धरेते ॥ सगुन ब्रह्म जो भजु अनूपा । रस स्वाद मोहि स्वाद

निरूपा ॥ ४८५ ॥ मनमें भोग वासना वसे। वहु अभिलाष बुद्धि मन रसे ॥ जोगे जुक्ति जो उपजे कबही। तो कषाय सब जाय नाशि तबही ॥ ४८६ ॥

दोहा—चारों विघन निवारिये। उपजे शुद्धसमाधि ॥ जेशी वेली चित्रकी। पवन शके नहि बांधि ॥ ॥४८७॥ कर्म समाधि बखान यह। क्रमक्रमतें उत्पति॥ कर्म समाधि आराधितें। लहे ज्ञानकी गति ॥ ४८८॥ ज्ञानपक्ष आगे कहुं। जोगजुक्तिकी रीति ॥ भगवान भान षोडश कला। जोग जोग परतीति ॥ ४८९ ॥

इति श्रीअमृतधाराग्रंथे अष्टांगयोगवरननं नाम

एकादशः प्रभावःसमाप्तः ॥ ११॥

अथ वेदांतमत बर्नन

दोहा—पातंजलिमतमें कहे। आठ जोगके अंग ॥ वेदांतमत सुननकी। शिष्य मन भइ उमंग ॥ ४९० ॥

प्रश्न

चौपाई—शिष्य पुछे गुरु मोहि समुजावो। ज्ञान योगसो योग लखावो॥ सोलह कला संपूरन चंद ॥ जाते प्राप्ति परमानंद ॥ ४९१ ॥

उत्तर

दोहा—षोडस अंग विचारिये। निदध्यासन परयंत॥

अभ्यास करेते भासहे। यह वेदांतको मत॥ ४९२॥

सोलअंगबरनन

कवित्त—जेमनेम त्याग जानो देशकाल आस ना-नो मूलबंध द्रग अस्थि देह समि कीजिये ॥ करी प्राणसंयमसु प्रत्याहार धारणासो आत्माके ध्यान-हुसे समाधिरस पीजिये ॥ चंददश अंगबंध सोहं स्व-रूपचंद प्राप्ति आनंदकंद जो जुक्ति जीजिये ॥ एसी गीति रीति पाइ भगवान मनुलाइ संशे विपरीत जाइ सोइ करिलीजिये ॥ ४९३ ॥

दोहा—योगयुक्तिबरनन करूं। ज्ञानद्रष्टि मनुलाई ॥ पूरनपद प्राप्ति भयो। आवागवन नसाई ॥ ४९४ ॥

चौपाई—सर्वब्रह्मभावना कीजे॥ इंद्रियनिके संजम करि लीजे ॥ यह युक्ति मन निश्चय धरे ॥ सो अ-भ्यास मुमुक्षु करे ॥ ४९५ ॥ व्यापक रूप अनूप सजाती ॥ नाम रूप सब त्याग बिजाती॥ बुद्धिमान यह नेमहि करे ॥ परमानंद स्वरूपे धरे ॥ ४९६ ॥ सर्व प्रपंच त्याग बुद्धि कीजे ॥ चिदाकार चैतन मन दीजे ॥ महंत पूजि यह त्याग कहावे ॥ सद्य मोक्ष मुमुक्षु हिपावे ॥४९७॥ मन अरु वचन जहां नहि जाई॥ सोस्वरूप लहि मौन सुहाई ॥यतो वाचा निवृत्तककहि-

ये ॥ मनहि अप्रापतिमौन सुलहिये ॥ ४९८ ॥

प्रश्न

चौपाई–यतो वाच निवर्त्तक कहिये । मनाकि प्राप्ति ज्याहि न लहिये॥श्रुति स्मृति सो कही बतावे । गुरु मिलि शिष्य कहा फल पावे ॥ ४९९ ॥

दोहा—गुरु कहे सो वचन करी । मन करि शिष्य प्रमान ॥ मन वाणी प्राप्ति नही । सो स्वरूप क्यों जान ॥ ५०० ॥

चौपाई—पंचभूतते उत्पति होई । प्रपंच नामसो कहिये सोई ॥ नाम रूप सो वचननि कहिये । निराकार निरवचनमुलहिये ॥ ५०१ ॥ पुत्र पिताकों आदि न जाने ॥ क्यों मन वचन ब्रह्म परमाने॥मन अरु वचन कहे यह जोहे ॥ शाखा चंद्र लक्षणा सोहे॥५०२ यह सुनि सहेजे परमानि॥अज्ञान मौनि सो रोके बानि॥ वचन अप्राप्ति मौनि रूपा ॥ ज्ञानकला निज परम अनूपा ॥ ५०३ ॥ आदि अंत जाको नहि पावे ॥ सोई पूरनदेश कहावे ॥ सोई सबमें व्यापक लहिये॥ बिन हि देह ब्रह्म सो कहिये ॥ ५०४ ॥ कालरूप सबको कले ॥ ब्रह्म शेष निमिषमे दले ॥ कालशब्द करि ताको जानो ॥ अखंडानंद ब्रह्म परमानो ॥५०५

दोहा—आसन वासन है बहुत । कहो प्रगट करि दोई ॥ सुख आसन सो एकहे । सिद्धासन पुनि होई ॥९०६ ॥ सुखस्वरूप चेतन हे । तहां कहे आराम॥ यह आसन आसन सधे । प्राप्ति पूरनकाम ॥ ९०७ ॥

अरिल—सिद्ध होइ सब भूत विश्व अधिष्ठानहे ॥ अव्यय अज पद रूप सो आसनमानहे ॥ तहां आसनमें बेठि सिद्धपद पाइये ॥ परिहा ज्ञानस्वरूप अनूप तहां मन लाइये ॥ ९०८ ॥ अविनाशी चेतन जगतको मूलहे ॥ दिशे जगत अनूप ब्रह्मको तूलहे ॥ यह मूल परमान तहां मन लाइये ॥ परिहा राजजोग संजोग मूल बंध गाइयें ॥ ९०९ ॥ समिता देहसु एक अंग॥ सब मोरियें ॥ तजो अंगअभिमान ब्रह्मसो जोरियें॥ यह विधि समता होइ ज्ञानमय जोइरें ॥ परिहा देह सम कीहि काम शुष्कवृक्ष होइरे ॥ ९१० ॥ करी ज्ञानकी द्रष्टि ब्रह्म जग जोइये ॥ नाना जग परतीति सु नाना होइये ॥ सोई दृष्टि उदार सार सब लहतहे॥ परिहा लिखे नासिका अग्र जोगेश्वर कहतहे ९११॥

दोहा—द्रष्टादृष्टि विभागतें । जो उपजे आनंद ॥ दृष्टि सोइ परमान हे । नहि नासाप्रतिबंध ॥ ९१२ ॥ प्राण वाय प्राणायामको । बरनो ज्ञान प्रमान ॥

रेचक पूरक आदि है । पुनि कुंभक सो जान ॥
॥ ९१३ ॥ चित्त आदि जे भावहे । करे ब्रह्ममें लीन ॥
निरोध होइ सब वृत्तिकों । प्राणायाम प्रवीन ॥९१४॥
पिंडब्रह्मांड अभावकरि । निषेध सबे परपंच ॥
नाम रूप सब अस्त करि । सो रेचक मति संच ॥
॥ ९१५ ॥ सोहं हंसो वृत्तिकरी । सोहं हंसो समान ॥
ब्रह्मभाव पूरन भयो । यह पूरक परमान ॥ ९१६ ॥
सोहं हंसो एक वृत्ति । रही हृदय ठहराय ॥ भऱ्यो
कुंभ जल मध्य ज्यों । कुंभक यह सुभाय ॥ ९१७ ॥
प्राणायामविधान यह । विद्वत करे बखान ॥ प्राण
घ्राण पीडा करे । ते नर अज्ञ निदान ॥ ९१८ ॥
विशे विपयता मेटिके । ब्रह्मभाव उर आन ॥ मन
मनन प्रतिहार यह । यहई मोक्ष परमान ॥ ९१९ ॥
जहां जहां मन जातहे । तहां ब्रह्म करि लेख ॥
सब साधारण एकता । शुद्धधारना पेख ॥ ९२० ॥
अहं ब्रह्मास्मि सही । निरालंब परकास ॥ परमानंद
आनंदसो । ध्यान मान अवभास ॥ ९२१ ॥
निरालंब जो वृत्तिहे । ब्रह्माकारविचार ॥ ध्यान ज्ञान
बिसरे सबे । सो समाधि उर धार ॥ ९२२ ॥ ज्ञान
समाधि समाधि यह । वेदांतमततें जान ॥ याहुमें

द्वै भेद हे । सो पुनि करूं बखान ॥ ९२३ ॥

सोरठा—सविकल्प हे एक । निरविकल्प सो दूसरी ॥भगवान ज्ञान विवेक । समुझे पुनि समुजाई हो ॥९२४ ॥

दोहा—षोडश अंग प्रसंग जो । कह्यो गुरु समुजाई ॥ द्वै समाधिको भेद जो । शिष्य पुछे मनलाई ॥ ९२५ ॥

इति श्रीअमृतधाराग्रंथे षोडशयोगबरननं नाम

द्वादशः प्रभावः समाप्तः ॥ १२ ॥

अथ समाधिबर्नन.

दोहा—जोगजुक्ति बहुविधि कही । सही सही बहु त्रास ॥ दोइ समाधि समाधिको । शिष्य पुछनकी आस ॥ ९२६ ॥

चौपाई—गुरू कृपा करि उत्तर देई । शिष्य समाधान करि लेई ॥ द्वै समाधिको भेद बताऊं । नाम रूप गुन कर्म लखाऊं ॥ ९२७ ॥

दोहा—सविकल्प सो एक हे । निर्विकल्प पुनि जान ॥ जाको जेसो भेदहे । तेसो करूं बखान ॥९२८

चौपाई—संप्रज्ञाति पाहिले ही कहिये । सविकल्प पुनि यांही लहिये ॥ सकल दृश्यको भेद लखाऊं॥ ती

न भेद पुनि याके गाऊं ॥ ९२९ ॥द्रष्टानुवेध प्रथम सो कहियें । शब्दानुवेध दुजि सो लहियें ॥ निर्विकल्प सो तीजी जानो । तिनुं भेद भिन्न परमानो ॥ ९३०॥ द्रष्टानुवेध सो नाम कहावे। सकल दृश्यमें व्यापि रहावे॥ मो विन दृश्य फुरे नहि क्यांही । सबका द्रष्टा व्यापकहोई ॥ ९३१ ॥ ज्यों जल फेन तरंगनिमांहीं । सूतविना पुनि वस्त्र न कांही॥कंचन विन आभूषन जेसो। द्रष्टाविनदृश्य सब एसो॥९३२॥ हो द्रष्टा सबमांहि अभूत। सकल द्रष्ट व्यापिक अनुभूत ॥ द्रष्टानुवेध यह कहि समुजाइ ॥ शब्दानुवेध पुनि कहो सुनाइ ॥ ९३३॥

अरिल—शब्दानुवेध यह जान मान सब धंधहे ॥ दृश्य दृष्टि विभाग नहि संबंधहे ॥ हे असंग सबमाहि संग कहा पाइये ॥ परिहा असंग पुरुष यह जान वेदमे गाइये ॥९३४॥

अथश्रुतिः

असंगोह्ययं पुरुष इति श्रुतंः

अरिल—निर्विकल्पको रूप कहो समजाइके ॥ असंग नही अनुभूत मेटि द्वय भाइके ॥ सुषोपति समकरि जान नहि व्योहाररे ॥ परिहा निर्विकल्प यह जान साधि सो साररे॥९३५ ॥

दोहा—सविकल्प बाहिर करे। श्रवन चक्षु दे आदि ॥ बस कारनकी करनता। करन करावन वादि ॥ ॥ ६३६ ॥ निर्विकल्पक अंतर करे । मनमे विकल्प त्याग ॥ द्रष्टानुवेध शब्दानुवेध। निर्विकल्पता पाग ॥ ६३७ ॥ द्रष्टा है सो आतमा। दृश्यबुद्धि व्योहार ॥ शुभ पुनि अशुभ प्रभाव द्वय। मोहि करी निरधार॥ ॥ ६३८ ॥ बुद्धि कुटिल जब शठ बहुति। अबमे करी प्रमान॥साधुसंग निर्मल भही। सो ताही करिजान ॥६३९॥मन मलीन सो जब हुतो। तबमे द्रष्टा रूप॥ कर संकल्प विविध विधि। द्रष्टांम अनुसूत ॥ ६४०॥

सोरठा—शब्दानुवेध पुनि जान। अंतःकरनप्रकाश सो ॥ निर्विकल्प पद मान। होय संग सब दृश्य को ॥ ६४१ ॥तमप्रकाश नहि एक। ज्ञान अज्ञान समान नहि ॥ यहहि सत्वविवेक। असंग मंगक्यों एकता ॥६४२ ॥ज्यों स्वप्ने नृप होइ। जागि उठे संबंध नही ॥ यह शिक्षा जिय जोइ। मन बुधिमो प्रसंग नही ॥६४३ ॥ तीजी विकल्प त्याग। द्रष्टा दृश्य विभाग नहि ॥ नहि असंग वैराग्य। जे स्वरूप सोई सही ॥ ६४४ ॥ सो ज्ञान परमान। द्वै समाधि नासे जहां॥जीवनमुक्त सो जान। सर्वकर्मको नाशतिहां६४५

जेसेहि चमक जोइ । लोह चेष्टा करतहे ॥ मन बुद्धि इंद्रिय होइ । क्रिया करे रवि दीप ज्यो ॥ ९४६ ॥

जीवनमुक्तविषे

कवित्त—जीवनही मुक्त एसो मनि दीप चित्र जेसो अचल स्वरूप ऐसे चेतन प्रकाशहे ॥ तपे नहि त्रय ताप देहको तजे संताप आपहिमे लहे आप अहंबुद्धि नाशहे॥शुद्धअहं अहं धारि अहंजपि अहंजागि नानाधीटारि दुजो नहि भासहे ॥ जीवन सु मुक्तरूप भगवान सो अनूप व्यापक सकलभूत ब्रह्ममे विलासहे ॥ ९४७ ॥

दोहा—जीवनमुक्त सो मुक्तहे । जहां मुक्ति नहि बंध॥ बंध मोक्ष अज्ञान माहि ।नही ज्ञान संबंध॥९४८॥ बंध अनातमभाव ही । मुक्तसु आतमभाव ॥ आत्मअनातमभाव नहिं । जीवनमुक्तसुभाव ॥ ९४९ ॥ ज्ञानी जीवनमुक्तपद । सदचिदआनंदरूप ॥ प्राणधारण जीवनी कह्यो । मुक्तिसु ज्ञान अनूप ॥९५० ॥ रहे देहमे देह नहिं । तीन ग्रंथि करि भेद ॥ रविप्रकाश प्रकाशसम । यों भाखत हे वेद ॥ ९५१ ॥

चौपाई—उरे परे जिनि ब्रह्म पिछाना । जीव

ब्रह्म एक करि जाना ॥ तिनो ग्रंथि जाइ सब नास ।
संशय कर्म अहं नहि भास ॥ ९९२ ॥

प्रश्न

सोरठा—तीन ग्रंथिको भेद । कहिये गुरु समुझाइके ॥ तव मुख वाणी वेद । ज्यों को त्यों समुझाइये ॥ ९९३ ॥

उत्तर

दोहा—ग्रंथिभेद जो भेद कहि । सो पुनि कहो विचारि ॥ गुरु कहे गुरु ज्ञानते । शिष्य शिख उरधारि ॥९९४ ॥

संशयग्रंथिविषे

सवैया—जीवहि जीव समान कहो कोहि । पुनि लेह वहु दोह देहहें ॥ आदि कछु पुनि अंत कछु कहे । मध्य कछु यह कौन कहेहें ॥ जो यह एक कहे क्यों अनेक । यहे अविवेक सो पागि रहेहें ॥ संशे अज्ञान तजे यह जान । भजे भगवान सो लाभ लेहें ९९५ ॥

दोहा—यह संशयकी ग्रंथिहे । कहि अल्प करि सोई ॥ गुरुशास्त्रप्रतीत नही । निश्चय कछू न होई ॥ ९९६ ॥

कर्मग्रंथिविषे

कवित्त—कर्मग्रंथि कहे ग्रंथ तामे भुल महापंथ ज्ञान रू अज्ञान मथे दधि कैसो घोलहे ॥ संचित संच प्रमान प्रारब्धहि भोग मान क्रियमान कृत ठान झुल जकझोलहे ॥ वरणाऽऽवरण धर्म आश्रम हे महाश्रम शुभाऽशुभ कर्म धर्म डोल डग डोलहे ॥ भगवान भ्रम छुटे कर्मको भंडार फुटे सबे आस बास तुटे ज्ञान सो अमोलहे ॥ ९९७ ॥

सोरठा—कर्म ग्रंथि यह जान । बहुत कर्म अभिमानहे ॥ किये वेद परमान । सब छुटंते छूटिहे ॥ ९९८ ॥

अहंग्रंथिविषे.

कवित्त—अहं ग्रंथि यह जान अहं अहं के बखान पंडित सुजान जान औरहू अनेकहे ॥ अहं राज अहं रंक अहं तजि सबे शंक अहं अहं पर्यो पंक स्वप्न सुख जे कहे अहं साध अहं चोर अहं जान अहं भोर अहं सर्वधर्मधार अहं दुजा से कहे ॥ अहं अहं मान बंध भुले जग जाल धंध भगवान ज्ञानसिंध तत्वसो विवेकहे ॥ ९९९ ॥

दोहा—अयं ग्रंथि जीव यों बध्यो । महाप्रेत

परमान ॥ विप्रभाव तजि प्रेत भाजि । अहं अशुद्ध करि जान॥९६०॥जीव ग्रंथि बंधन सही। कहुं मुक्तिको भेद॥पुरे उरे सुख एकसो। यों भाखत हे वेद ॥९६१॥

चौपाई—ज्ञानदेहअभिमान यों जानो ॥ ज्यों गोला नालियेररहानो॥जेसें जलमें चंद अनूपा॥ त्योंहीं जीवनमुक्त निरूपा ॥ ९६२ ॥ देह सहित विदेह कहा वे ॥ जीवनमुक्त नाम सो पावे ॥ भुज्यो बीज देखीये जेसो दांत उखारि साप पुनि तेसो ॥ ९६३ ॥ काचो विष जो खावे कोई॥ ताको दुख बहुत विधिहोई॥माऱ्यो विष हे अमृतरूपा॥ याहींज्ञानि कर्म निरूपा ॥९६४॥

दोहा—कर्म करे सो देखिये । अहं कर्म तजि भेद ॥ असंग रूपसो मुक्तहे ॥ यो भाखत हे वेद ॥९६५॥

ज्ञानपक्षविषे.

ज्ञान महिं कर्म नही कल्पित सो कहे कांहि मिथ्या भ्रम भ्रम नही चित्र केसो भासहे ॥ चित्र नारि नारि देखे सचि बुद्धि करी लेखे कंचनभूखन पेखे अज्ञता प्रकाशहे ॥ दीपरवि ज्यों प्रकाशे सेत मनि रंग नाशे अहंअहं मान त्राशे नहीं बंध पासहे ॥ मिश्री लशकर जेसो द्वैत भ्रम भ्रम केसो भगवान ज्ञान एसो ब्रह्महि निवासहे ॥ ९६६ ॥

सोरठा—ज्ञानी ज्ञानस्वरूप । ब्रह्म ब्रह्म पुनि ब्रह्महे॥ करता कर्म अनूप । इच्छा आदि प्रभाव जे ॥८६७॥
दोहा—इच्छा तीन प्रकारहे । सो पुनि करूं निरूपा ॥भगवान ज्ञान सो ज्ञानिहे । निर्मल परम अनूप८६८
इति श्रीअमृतधाराग्रंथे जीवन्मुक्तनिरूपणबरननं नाम त्रयोदशः प्रभावः समाप्तः ॥ १३ ॥

प्रश्न

दोहा—कृपा करो गुरु शिष्यपर । करो ज्ञानप-रकाश॥प्रारब्धको भेद ज्यों।जीवनमुक्त निवास॥८६९॥

उत्तर

दोहा—श्रीगुरु उत्तर देतहे । शिष्यको प्रश्न विचा-रि।इच्छा अरु अनइच्छता।परइच्छाउरधारि॥८७० ॥
अरिल —इच्छा प्रथम बखान अनिच्छा दूसरी ॥ परइच्छा परमान लहतहे तीसरी ॥ सर्व भोग संजोग करत निःसंकहे ॥ परिहा जलज बसे मांहि लेपे न-हि पंकहे ॥८७१ ॥

प्रश्न

दोहा—तीन भांतिके भोगहे । तीनके कर्म संजोग॥ कोन भोग काकू भयो । शिष्य पुछे तजि सोग॥८७२॥

उत्तर

दोहा—गुरु कृपा करि कहतहे । लहे शिष्य सुख धाम ॥ जनक आदि राजा भये । प्राप्ती पूरण काम ॥ ९७३ ॥ ऋषभदेव शुकदेव पुनि । याज्ञवल्क्य जडभर्त ॥ वामदेव नारद प्रगटहे।ए विरक्त पद अर्थ ॥ ९७४ ॥ अर्जुन अरु उद्धव नृपति । और जनक बहु भूप ॥ ब्रह्मज्ञानतें मुक्तिहे । तिनहि न बंधनिरूप ॥ ९७५ ॥

अरिल —इच्छा ज्ञान प्रमान जान जो जनकहें॥ सुत वनिता परिवार अश्व गज कनकहे ॥ शाम दाम छल भेद शत्रुकी जीतसो ॥ परिहा महामुक्ति परमान ज्ञानकी रीतसो ॥ ९७६ ॥ परइच्छा परमान जान जडभरतहे ॥ सुख दुख भोग प्रमान ओरके अरथहे ॥ इष्ट अनिष्ट प्रभाव नही सो आनही ॥ परिहा परइष्ट व्यवहार सर्वथा मानही ९७७ ॥

दोहा—परइछाके भोगमें । याज्ञवल्क्य शुकदेव॥ जनकराज इच्छा करि । मुक्ति माज नहि भेद ॥ ९७८ ॥ अनइच्छा अर्जुनकी । सो पुनि करूं बखान ॥ युद्ध करन इच्छा नही । कहा बचन परमान ॥ ९७९ ॥

अरिल—अनइच्छाको भोग जोग अर्जुन हे ॥ बहु

संकल्पविचार पाप अरु पुन्यहे॥ भारत स्वारथ त्याग धनंजय जोईरे ॥ परिहा कृष्ण कहे बहु भांति अनइच्छा होईरे ॥ ९८० ॥

दोहा—जो अपने इच्छा नही। परइच्छा व्योहार॥ ज्ञान पाइके करतहे। कर्म कलंक न भार॥ ९८१ ॥ शुकदेव आदि सात्विक सबे। जनक रजोगुन जोइ॥ दुर्वासा तामस प्रगट। ज्ञान भेद नहि कोइ ॥९८२॥

सोरठा—योग वसिष्ठहि जान। सुत बनिता परिवार सब॥ आत्मज्ञान परमान। श्रोता रघुपति जहां॥ ९८३॥ ज्ञानी जीवनमुक्त। क्रियाभेदते भेद नही। राज भीष्म सम युक्त। प्रारब्ध कृत भेदसो ॥९८४॥

प्रश्न

चौपाई—जनकराज बहुभोगी कहिये॥ वैराग्य तिनको नहि लहिये॥ शुकदेव आदि विरक्तपद जाना॥ एक मुक्त केसे परमाना ॥ ९८५ ॥ यह संशय गुरु तुरत नसावो ॥ जेसी हे तेसी समुझावो ॥ शिष्यको संशय तुमते नासे ॥ तुम्हारि कृपासे ज्ञान प्रकासे ॥ ९८६ ॥ शिष्यको संशय गुरु सुनि लियो॥ फिर ताहीको उत्तर दियो ॥ जोग भोग साधनतें होई ॥ साधनभेद कहूं पुनि सोई॥ ९८७ ॥

दोहा—उपसम साधे जोगके। वैराग्य त्याग परका-
श॥ वेदांतशास्त्रके श्रवणतें। निर्मलज्ञानप्रकाश॥९८८॥
सोरठा—दया धर्म दृढ होई। सो ईश्वरकी भक्ति-
तें॥ सबमे राम समोई॥ सूत्रमाला ज्ञानसो॥९८९॥
चौपाई—वैराग्य जोग ज्ञान सुन लिहिनो॥ भक्तिपु-
छनको मन दिहिनो॥ तब गुरु कृपा करी निरधार॥ भ-
क्ति कहूं तोहि दश परकार॥ ९९०॥ कथा सुने अरु
स्मरन करे॥ कीर्ति करीसुचरन चित्त धरे॥ प्रति-
मा पूंजे डंडवत करे॥ दास्यभाव मित्र बुद्धिधरे॥९९१॥
तन मन धन हरजीको दीजे॥ नवधाभक्ति प्रेमरस
पीजें॥ प्रेमभक्ति नवधामे एसें॥ मालामाहि धागा-
कुं जेसे॥९९२॥ दशप्रकारकी भक्ति करहि॥ वेदां-
त सुनि धीरज धरहि॥ भक्ति बीज दासा तन गायो॥
श्रवण किये ज्ञानपद पायो॥ ९९३॥ जोगजुक्ति प-
हिले मन धऱ्यो॥ वेदांत सुनि पुनि निश्चै कऱ्यो॥ इंद्रिय
जब जागते रहे॥ वेदांततें ज्ञान सो लहे॥ ९९४॥ वै-
राग्य त्याग सो पहिले कीन्हो॥ पीछे वेदांतमें मन दीन्हों
ताते त्याग भोग मन रहे॥ वैराग्य विन संग्रहग्रहे॥९९५॥
अरिल—याज्ञवल्क्य शुकदेव सेव करि जोगकी॥ ज-
हा भावना त्याग महारस भोगकी॥ तातें उपसम चि-

त सर्वथा जोईरे ॥ परिहा वेदांतसुनि पुनि ज्ञान सर्वथा होईरे ॥ ५९६ ॥

दोहा—वैराग्य दोप निग्रह जहां ॥ तहां सर्वको त्याग ॥ वीतराग सो देखिये । ज्ञान श्रवणतें जाग ॥५९७॥ सनकादिक नारदऋपि । वीतराग है सोइ ॥ त्याग होइ वैराग्यतें । ज्ञान मुक्तिपद जोइ ॥ ५९८ ॥ जनक आदि राजा जिते । नही जोग वैराग ॥ वेदांतको श्रवन करि । मोक्ष अमिरस पाग ॥ ५९९ ॥ दुर्वासाके प्रगट हे। मुख्य तमोगुन साम ॥ तातें क्रोधी कहतहे। मुक्तिज्ञानसुखधाम ॥ ६०० ॥ मुख्य रजोगुन जनकहे । शांतिगुन शुकदेव ॥ गुनविभागते भेदसो । ज्ञान मुक्ति नहि भेद ॥ ६०१ ॥ ब्रह्म निरंजन जानिये । गुनातीत परकास ॥ ज्ञानि ब्रह्म स्वरूपहे । नहि अज्ञान अवभास ॥ ६०२ ॥

कवित्त—ज्ञानीको स्वरूप एसो गुनातीत ब्रह्म जेसो गीताको वचन तेसो सो स्वरूप होइरे ॥ माया मन नाश ज्यांही सत रज तम कांही त्रय भेद भ्रम नाहि अहंबुद्धि खोइरे ॥ संचित हु तजे वासे अहंनाश कर्म नाशे अनंत दीपक प्रकाशे ज्ञान मध्य जोइरे ॥ क्रियेमान कृतहान प्रारब्ध भ्रम जान भ-

गवान मत्त मान ज्ञानमें समोइरे ॥ ६०३ ॥

अरिल—संचित धीन भंडार धार जलकी गिरे ॥क्रियेमान करि हान ज्ञान नलसु झरे॥ शेके अन्न समान जान भोगेहे ॥ परिहा प्रारब्ध व्योहार ज्ञान संजोगहे ॥६०४॥

दोहा—शेक्यो अन्न जामे नही । तृति होहि सब नकोइ॥ज्ञानि ज्ञान प्रकाश धन।कर्म कलंक न होइ॥६०५॥

सोरठा—आप रसोई काज । किनि अग्नि परकाश बहु । ज्यों कोई भूख समाज । रहि अग्निमें शेकिले ॥ ६०६ ॥ योंहीं ज्ञानप्रकाश । आप मुक्तिके कारणे ॥ अहंदेह भयो नाश । दिशे पर उपकारकों ॥६०७ ॥

कवित्त—ज्ञानिको स्वरूपएसो तेल विना दीप जेसो पारि विना नीर तेसो जन्यो पट जे कहे ॥ सुर सो प्रकाश ज्ञान माया निशि सबे हान भोर भये रेन जात सो तो निश्चै कहे ॥ नदीतीर तरू भयो वेगसो उखरी गयो ॥ हरे पान मनु दयो सो अविवेकहे ॥ ज्ञानिमे शरीर लहे तासों वेद अज्ञ कहे भगवान ब्रह्म रहे एकहि सो एकहे ॥ ६०८॥अंजनसो भ्रम नाशे निरंजन निर्मलप्रकाशे दुति दुति भ्रम नाशे ज्ञानको स्वरूपहे ॥ माया मन माने नाहि जीव ईश लहे काहि सिंधु बिंदु एक आंहि ज्ञान सो अनूपहे ॥ बंध

मोक्ष मोक्ष गौन शुद्ध सता सर्व भौन ॥ नर्क स्वर्ग करे कौन कहां छांहि धूपहे ॥ भगवान यह ज्ञान वेदविद हे प्रमान आपहीमे आप जान अमीरस कूपहे ॥६०९॥

दोहा—ज्ञान स्वरूप निरूपके । गुरू लखायो ज्ञान ॥ ज्ञानीको बरनन कर्‍यो । अब पुनि करूं बखान ॥ ६१० ॥

कवित्त—ज्ञानीको स्वरूप जान मोरे मनहि प्रमान दुति दुति सबे हान एकहिं सो एकहे ॥ एकहि सो एक नांहि दुजि तीजि नाश ज्यांहि विधि न निषेध ताहि कहे को अनेक हे ॥ भोग भाव सबे करे कर्ममे न मन धरे अहंबुद्धि परहरे तत्वको विवेकहे ॥ भगवान भे नसायो सिंधु बुंद में समायो वेदहसुं वेहि गायो शाखाचंद जे कहे ॥ ६११ ॥ ज्ञानिके कर्म एसो श्वेत मनि रंग जेसो नील पीत भ्रम तेसो वास्तव विनाशहे ॥ खात हेसु खात नाहि देखे नांहि दृष्टि तांहि श्रवन सुने न कांहि दीप ज्यों प्रकाशहे ॥ पानिके तरंग जाने बुद्धि बहुद्यत्ति ठाने ॥ अधिष्ठान आप माने सबको निवासहे ॥ द्रष्टा दृश्य ज्ञान एसो जलके तरंग जेसो भगवान भ्रम केसो ब्रह्ममे विलासहे ॥ ६१२ ॥

दोहा—कलास्वरूप ज्ञान जे। घटे बढे निशि जाम॥ आतमज्ञान प्रमान ज्यों। कला संपूरन काम॥६१३॥

सवैयो—ज्ञानकलासु कलासु कला करि। और कला सब काल कलाहे॥ज्ञान प्रमान प्रमान प्रमानसु और प्रमान प्रमान पलाहे ॥ ज्ञान निरूप निरूप निरूपसु और निरूप निरूप नलाहे ॥ आतमज्ञान सुज्ञान लसे पुनि ओर सबे भगवान बलाहे ॥ ६१४ ॥

दोहा—अमृतधाराग्रंथ यह । कह्यो वेदपरमान ॥ अर्जुनदास प्रकाश गुरु। तास शिष्य भगवान ॥ ६१५ ॥ साधुसंगप्रतापतें । श्रीगुरु ज्ञानप्रकास ॥ शुद्ध निरंजन ज्ञान लहि। कीन्हो वचनविलास ॥ ६१६ ॥ प्रगट निरंजन जानिये। ब्रह्मानंद परमान ॥ अंजन रंजन ता नहि। सो स्वरूप भगवान ॥ ६१७ ॥ परब्रह्म परमातमा । हे परोक्षपद जास ॥ ज्ञानअक्षि परतक्ष करि। कीन्हो ग्रंथप्रकास ॥ ६१८ ॥ श्रुति युक्ति विचारिके। शिष्य बुद्धि उरधारि ॥ यह विचारि सो मुक्ति हे । बंधनबंध निवारि ॥६१९॥ जे शठ कामी कुटिल नर। लोभीलंपट क्रूर॥ते यह ज्ञान समीप नही। रहे दूर बहु दूर॥६२०॥

कुंडलियाछंद—तिनकों ज्ञान शिखाइये। जिनकों

निर्मल चित्त ॥ जिनको निर्मल चित्त । वित्त हेत विसारे ॥ गुरु ईश्वरसम जान । ज्ञान हृदयमे धारे ॥ स्तुति निंदात्यागसब । मन वाणी करि जित ॥ तिनको ज्ञान शिखाइये । जिनको निर्मल चित्त ॥ ६२१ ॥

दोहा—सत्रहसे अठाईस । संवत् संख्या जान ॥ कार्तिक तृतिया प्रथमही । पूरन ग्रंथ सुजान ६२२ ॥ स्थान मुकाम प्रमान ही । क्षेत्रवास शुभमान ॥ तहां ग्रंथ पूरन प्रगट । कर्यो भाखि भगवान॥ ६२३ ॥ अर्थ माज भ्रमे नही । भ्रम माने भ्रम सोइ ॥ शुद्धमुक्ति सो पाइये । साधु शिष्य जो होइ ६२४॥ छंद भंग अक्षर कठिन । अर्थ विपरये होय ॥ दूषन ते भूषन करे । कोविद कहिये सोय ॥ ६२५ ॥ अंक समुच्चय जान यह । सर्व ग्रंथ कुजास ॥ वत्तीशा सु श्लोक यह । इग्यारसेहि पचास ॥ ६२६ ॥

इति भगवानदास निरंजनीसाधुकथितः श्रीअमृतधाराग्रन्थे सकलविवेकदीपिकाज्ञानस्वरूपबरननंनाम चतुर्दशः प्रभावः समाप्तः ॥ १४ ॥

समाप्तोयं ग्रन्थः ।

ॐश्रीशंकराचार्याय नमःसदास्तु ॥

अथ श्रीस्वामिराघवानंद

पंचकम्

शास्त्राचारविचारवित्तनिपुणं श्रीशंकराचार्यकं यद्वा कामविमोहदैत्यदलनं श्रीरामचंद्रं हरिम् ॥ किंवा कांतिभरं वरं सुखकरं श्रीकृष्णशब्दं शुभं भाव्यं भक्तगणैर्वदामि किमहं श्रीराघवंस्वामिनम् ॥ १ ॥ पादारविंदं विमलं धरंतं भक्तालिमालामतितोषयंतम् ॥ स्वामींद्रवर्यं सरलं स्मरामि श्रीराघवानंदयतिं नमामि ॥ २ सर्वं समुत्सृज्य समाचरंतं त्वन्योपकारार्थविभूतिमंतम् ॥ भूमिं स्वकीर्त्या परिपूरयंतं वंदे यतिं राघवनामवंतम् ॥ ३ स्वामंदभासेंदुमदं जयंतं दृष्ट्वैव चित्तं परितोषयंतम् ॥ शांतिप्रदं शांतवरं शुभं तं वंदे यतींद्रं शमलं हरंतम् ॥ ॥ ४ ॥ स्वांतं समाधौ स्थिरतां वहंतं ब्रह्माऽद्वितीयं खलु भावयंतम् ॥ ज्ञानींद्रमित्रं परमं पवित्रं वंदे यतींद्रं विमलं विचित्रम् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्वामिकेशवानंदनिर्मितं श्रीस्वामिराघवानंदपंचकं समाप्तम् ॥

॥ श्री ॥

श्रीगुरुराघवानंदंप्रतिपंचविधिप्रणिपाताः ॥

॥ यस्य प्रसादात्सततं जडोपि तुल्यो भवत्येवबृहस्पतेर्वै ॥ तत्पादपद्मं विनिधाय देहं श्रीराघवानंदगुरुं

नमामि ॥ १ ॥ यो वेदवित् शास्त्रपुराणवक्ता निरंतरं छात्रगणातिपाठकः ॥ तंनित्यमेकं त्वदये निधाय श्रीराघवानंदगुरुं वदामि ॥ २ ॥ अज्ञानतामिश्रनिवारको यश्छात्रादीनां ज्ञानप्रदीपकेन ॥ तं शुद्धभावात्त्वदयेनिधायश्रीराघवानंदगुरुं स्मरामि॥३॥स्वानंददं स्वांतनिवासिनां सदावाक्यप्रबंधैर्नियतःसुधोपमैः ॥ यो नित्यमेको जयते जयंकरःश्रीराघवानंदगुरुंभजामि ॥४॥ सर्वज्ञमानंदकरं मुहुर्मुहुः सदा निरोप्यैवत्वदंबुजे मुदा॥दयानिधिं देवगणैःप्रपूजितंश्रीराघवं ब्रह्म सदैव ध्याये ॥ ५ ॥ पचांगकं श्रीगुरुदैवतानां कृतं मुदैतत् यदुरामकेण ॥ प्रातः पठेद्यो यदि वा शृणोति स एव सम्यक् पदमेति विष्णोः ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीराघवानंदगुरुपंचकं संपूर्णम् ॥